मिर्ज़ा हामिद बेग

लॉकर में बंद आवाज़ें

लॉकर में बंद आवाज़ें

मिर्ज़ा हामिद बेग

शांति पुस्तक मंदिर, दिल्ली

कहानीकार—मिर्ज़ा हामिद बेग

कहानीकार मिर्ज़ा हामिद बेग ने उस दौर में कथा संसार में प्रवेश किया जब कहानी आंदोलनों और प्रवृत्तियों के बंधन तोड़ चुकी थी और प्रायः कहानीकार सररियलिज़्म, प्रयोग, प्रतीक और रूपक के इंद्रजाल से विचित्र शैली और पद्धति द्वारा पाठक के विवेक और चेतना को जटिल रचनाओं की भूल-भुलय्यों में उलझाने का प्रयास कर रहे थे और अपने अस्पष्ट भविष्य और पतनशील सामाजिक परिस्थितियों में कई प्रश्न उनके सामने प्रश्नचिह्न बनकर खड़े हो गए थे। यह वह समय था जब वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अपने समाज से कटकर अपने विचारात्मक और भावात्मक अकेलेपन के खोल में बंद होकर रह गए थे।

हामिद बेग ने अपनी कहानी-यात्रा का आरंभ 1961 में "रेल का डिब्बा" लिखकर किया था और इसके बाद गवर्नमेंट कालेज कैम्बलपुर के विद्यार्थी-काल में उन्होंने कालेज की पत्रिका "मशअल" में "वो टूटा हुआ मकान जिससे यादों के महल क़ायम हैं" नामक कहानी भी लिखी थी लेकिन कुछ कारणों से वे उनके मानक स्तर पर पूरी नहीं उतरीं अतः वे 1973 में लिखी गई अपनी कहानी "ज़मीन जागती है" से अपनी कथा-यात्रा का आरंभ मानते हैं क्योंकि इससे पूर्व की अपनी तमाम प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओं को उन्होंने अस्तरीय समझकर बहिष्कृत कर दिया था।

"ज़मीन जागती है" उनकी एक ऐसी कहानी है जिसका पाठकों और आलोचकों ने प्रायः संदर्भ दिया है और स्वयं उन्हें भी यह अत्यंत पसंद है और आज इसे प्रकाशित हुए यद्यपि एक लम्बा समय बीत चुका है और इसके बाद वे अनेक कहानियों की रचना कर चुके हैं किंतु आज भी यह उनकी मनपसंद कहानी है। उनके कथनानुसार :

> "यह कहानी उस दौर की प्रचलित कहानी के बंधे, टंके उसूलों के विरुद्ध विद्रोह-पताका बुलंद करती है बल्कि उससे भी दो कदम आगे...इसलिए कि मैंने अतीत, वर्तमान और भविष्य की तार्किक परिकल्पना रद्द कर दी है और Such as इसका कोई विषय नहीं जबकि इस कहानी की तकनीक और शैली का पारस्परिक मिश्रण इसके विषय को उभारता है।"

आगे चलकर वे लिखते हैं :

> "यह कहानी रचते हुए मैं इस नतीजे पर पहुंचा था कि शब्दों को उनके प्रचलित अर्थों में प्रयोग करने जैसा मूर्खतापूर्ण कार्य और कोई नहीं जबकि हमारे ज़्यादातर कहानीकार इस निकृष्ट प्रक्रिया से गुज़रते हैं और गुज़र

> रहे हैं। कभी कहानीपन की इच्छा में और कभी आलोचक और भोले पाठक का ध्यान समेटने की खातिर शब्द को केवल अभिव्यक्ति या केवल संचार के लिए प्रयोग किया जाता है। कहानी "ज़मीन जागती है" लिखते हुए मैंने 1973 में इस घटिया रस्म को अदा करने से हाथ खींच लिया। इसलिए भी कि मुझे हक पहुंचता है अपने निजी संसार का निर्माण करने का। और मैं हक पर हूं अपनी शुद्ध ज़ाती हालत और समग्र व्यक्तिगत अनुभवों और संवेदनाओं के शब्द को पहले से निश्चित परिकल्पनाओं से लिप्त करने पर।"
>
> (त्रैमासिक जिहात श्रीनगर, जनवरी-मार्च 1999, पृ. 46)

उपर्युक्त कहानी एक अंधे खुश्क कुएं के बारे में है जिसमें से लोभ और लालच के शिकार व्यक्तियों को पानी चलने की आवाज़ आती है और इस कारण लोगों को उसमें ख़ज़ाना होने का भ्रम हो जाता है और फिर उसकी प्राप्ति के लिए लालसा और लोभ में वे कुएं में उतरते जाते हैं जिससे बाहर आने का कोई रास्ता नहीं, परिणामस्वरूप वे गिरती मिट्टी में दबकर मर जाते हैं।

मिर्ज़ा हामिद बेग की सोलह कहानियों का उनका पहला संग्रह "गुमशुदा कलमात" के नाम से जनवरी 1981 में प्रकाशित हुआ जो उनके इलाके छछ की सभ्यता, सामाजिक परिस्थितियों और वहां आबाद मुग़ल परिवारों के रहन-सहन और तौर-त्तरीकों का चित्रण है। इसके बाद उनका दूसरा संग्रह "त्तार पर चलने वाली" 1983 में छपा जो उनकी बारह कहानियों और एक लघु उपन्यास पर आधारित था। इसके बाद उनका तीसरा संग्रह "किस्सः कहानी" 1984 में प्रकाशित हुआ जो उर्दू की बजाय उनकी क्षेत्रीय भाषा छाछी में लिखा गया था। इस संकलन में उनकी 13 कहानियां थीं और इसे छाछी भाषा की पहली पुस्तक होने का श्रेय प्राप्त है। इस पुस्तक पर उन्हें पाकिस्तान राइटर्ज़ गिल्ड ने श्रेष्ठ साहित्यिक सम्मान भी प्रदान किया था। इन संग्रहों के बाद लगभग हर वर्ष प्रकाशित होने का सिलसिला कुछ रुक-सा गया और फिर सात वर्ष पश्चात् उनका चौथा संग्रह "गुनाह की मज़दूरी" छपकर हमारे सामने आया। अपनी इस लम्बी साहित्यिक यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होंने अपने संबंध में लिखा था :

> "कहा जा सकता है कि मैं फ्रांसीसी पतनशील रचनाकार Huysman के एक चरित्र असंती के ड्राइंग रूम से जन्म लेने वाला एक कहानीकार हूं जिसने कहानी "ज़मीन जागती है" लिखकर अग्रभूमि की धुंधलाहट और अत्यंत अनिश्चित हालात के चित्रण को आवश्यक खयाल किया केवल इसलिए कि मैं अपनी सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनैतिक प्रणाली से संतुष्ट नहीं था। अतः मैंने कहानी "ज़मीन जागती है" की सूरत में एक ऐसी पैराबल लिखी जिसका न तो कोई आरंभ है न अंत।"
>
> (मेरा तसनीफ़ी सफ़र, त्रैमासिक जिहात, पृष्ठ 45)

उपर्युक्त कहानी में छः व्यक्ति सोने की प्राप्ति के लोभ में एक अंधे खुश्क कुएं पर पहुंचते हैं और उनमें से दो कुएं में उतर जाते हैं और सोने की लालसा में मृत्यु का शिकार बन जाते हैं। फिर दो आदमी और व्यक्तियों को लाने के लिए

गांद की तरफ़ चले जाते हैं और दो पीछे रह जाते हैं। कहानी संवाद की सूरत में है :

> "बात दरअसल यह है कि हम चार आदमी कुछ नहीं कर सकते" तीसरा उनसे संबोधित होता है।
> "हमारे पास रस्सी तो है नहीं। बस दो आदमियों की ज़रूरत होगी। हममें से दो को नीचे उतरना होगा और बाकी चार बाहर रहेंगे।" चौथा बात को मुकम्मल कर देता है।
> पांचवां और छठा एक ज़बान होकर—"जो चीज बाहर लानी होगी काफ़ी भारी होगी ?"
> वे चुप रहते हैं फिर तीसरा जैसे बात ख़त्म कर देता है, "सुना तो यही था कि सोने का वज़न ज़्यादा होता है।"
> अब पांचवां और छठा दो विश्वसनीय आदमियों की तलाश में शहर की तरफ़ जा रहे हैं।

मानव-लोभ और लालसा की यह कहानी किसी विशेष युग का चित्रण नहीं करती बल्कि मानव के जन्म से ही उसके अंदर उत्पन्न हो जाने वाले प्राकृतिक स्वभाव की निशानदेही करती है; किंतु केवल इसी कहानी में ही नहीं बल्कि और कई कहानियों की बुनत में भी प्रतीकों और रूपकों को प्रयोग में लाया गया है जैसे उनकी कहानीः "बुर्ज-ए-अक़रब" में। प्रकृति के प्रतिकूल और आश्चर्यजनक घटनाओं पर आधारित इस कहानी के चरित्र इंसान और बिच्छू हैं और इसमें इंसान सोने के बिच्छू की खोज की लालसा में अपने स्थान से गिरकर ऐसे चक्कर में पड़ जाता है कि अंततः मृत्यु से दो-चार होता है।

"नींद में चलने वाला लड़का" अपने आस-पास की सामाजिक ज़िंदगी से निःस्पृह एक ऐसे युवक की कहानी है जो सोते में जागता और जागते में सोता है। यह अद्भुत चरित्र सोते में हवा के विलाप सुनता है और रात के अकेलेपन में सितारों की चालों की गिनती करता है और प्रायः सोते में घर से निकलकर प्रकृति की गोद में जा सोता है। समाज और उसके रस्मों-रिवाज़ों के विरुद्ध वह चैतन्य रूप से विरोध प्रकट करने का साहस नहीं कर पाता लेकिन अवचेतन अवस्था में यह कार्य बड़ी कुशलता से कर लेता है। यही कारण है कि शादी के दिन जब बारात जाने वाली होती है वह अकस्मात ग़ायब होकर प्रकृति की गोद में शरण लेता है। जैसाकि कहानीकार ने अंतिम कुछ पंक्तियों में इसका यों वर्णन कर दिया है :

> "इस हंगामे में पता ही न चला कि कब सूरज अस्त हो गया। बारात की कोई खबर न थी। हर तरफ़ व्याकुलता बढ़ने लगी। गैस के हंडे जलाकर ऊंचे स्थानों पर रख दिए गए। लड़कों की वह टोली जिन्हें मशालें देकर दरिया की ओर भेजा गया था, वापस लौट आई थी। बारात का पता-निशान कहीं न था। ज़नाने में बड़ी मुग़लानियां व्याकुल होकर घूमने लगीं। तब सुर्ख़-अंगारा दुल्हन भी उठी और धीरे-धीरे चलती बालकनी तक आ गई। उसके पीछे-पीछे सहेलियों का हुजूम था।

> नीचे तंग घाटियों में घुप्प अंधेरा सांसें ले रहा था। हरियाली के तख़्त पर वह शेरों की छाती वाला अब भी सो रहा था और उसके दूधिया कुर्ते को नर्म हवा धीरे-धीरे झुला रही थी और वह एक कुंज में करवट लिए दुनिया-जहान से बेख़बर सो रहा था।''

इनकी उपर्युक्त और अन्य कहानियों के अध्ययन से हमें जगह-जगह पर यह एहसास होता है कि वे इस दौर के उन कहानीकारों में से हैं जिन्होंने हमेशा अपनी धरती से रिश्ता क़ायम रखा है। वे अपने क्षेत्र, सांस्कृतिक मूल्यों, रस्मो-रिवाज और वहां के लोगों से हमेशा जुड़े रहे हैं और अपनी धरती के वासियों के दुख-दर्द में शरीक रहे हैं। वे अपने क्षेत्रीय मेलों-उत्सवों में रचे-बसे हैं और जनता के जीवन को उन्होंने बहुत निकट से देखा-पहचाना है और उनके दुख-सुख, ख़ुशी और शोक को महसूस ही नहीं किया बल्कि अपनी कलम से पृष्ठों पर अंकित भी कर दिया है। वे उनकी ग़रीबी, पिछड़ेपन, सामाजिक असमानता और दयनीय स्थिति पर आंसू बहाते हैं, और यही उनकी कहानियों की आत्मा है। उन्होंने स्वयं भी अपनी कहानियों के बारे में यों लिखा है :

> ''मेरी यादों की पिटारी में मेरे पैतृक क्षेत्र छछ के मेले-ठेलों में नाचने वाली नर्तकियों की नींद से भरी आंखें, लालू खेत और गोली मार कराची में असारे गए मुहाजरीन के ख़ेमे, भीतरी सिंध में बहती नहरों के किनारे आबाद या बर्बाद बरोही क़बीले और गरीब हारियों के झोंपड़े और बकरा पीढ़ी, कराची में मेहनत-मज़दूरी की ग़रज़ से आए हुए मेरे देशवासियों की गंदी बदबूदार बस्तियां अब तक कायम और स्थिर हैं...। यह बे-वतन, न किए गए पापों के बंदी और सबसे बढ़कर मेरा अनादि एकांत मेरी रचनाओं की सप्लाई लाइन है।''

यों तो उनकी बहुत-सी कहानियों जैसे मुग़लसराय, बुर्ज-ए-अक़रब, नक्कालों की रात, गुमशुदा कलमात, मुश्की घोड़ों वाली बग्घी इत्यादि का ज़िक्र और प्रसंग प्रायः देखने को मिलता है मगर ''कार्तिक का उधार'' उनकी एक ऐसी कहानी है जिसके बारे में शायद कुछ लिखा नहीं गया या बहुत कम लिखा गया है हालांकि यह देश के बंटवारे के दिनों में उपमहाद्वीप की जनता के दिलों के अंदर ही अंदर सुलगने वाली घृणा और सम्प्रदाय की आग और सदियों से आबाद इंसानों का जबरदस्ती और विवशता में प्रवास का मुंह बोलता चित्र है। इस कहानी में कोई नारेबाज़ी नहीं और न ही हालात और घटनाओं का अत्युक्ति से वर्णन करने का प्रयास किया गया है। ताहम इसमें दर्द और पीड़ा का एक सागर बह रहा है जो हमें सोच और चिंतन में डुबो देता है और हमें झकझोर कर रख देता है लेकिन कुछ कारणों से यह कहानी बंटवारे और दंगों की कहानियों में शामिल न हो सकी क्योंकि यह कहानी उस दौर में नहीं बल्कि लगभग चालीस वर्ष पश्चात लिखी गई क्योंकि जब यह त्रासदी हुई थी तो उस समय इसके रचनाकार पैदा भी नहीं हुए थे और अब तो यह विषय एक भूली हुई कहानी बन चुका है। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि यह एक महत्वपूर्ण कहानी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कहानी का केंद्रीय चरित्र एक सरदार है जो गांव-गांव फेरी लगाकर वहां के बासियों को धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं प्रेम गाथाओं पर आधारित पुस्तकें उपलब्ध कराता है और लोग प्रायः उससे उधार में पुस्तकें खरीदते हैं और रकम का भुगतान फ़सल के पश्चात् कार्तिक में करते हैं। किंतु बंटवारे से कुछ पहले वह पुस्तकें बेचकर चला जाता है मगर अपना उधार वसूल करने कभी वापस नहीं आता और गांव वाले उसकी प्रतीक्षा करते रह जाते हैं। कहानी का अंत एक नाटकीय अंदाज़ में होता है जो चौंकाता ही नहीं बल्कि हमें सोचने पर भी विवश करता है। ज़रा निम्नलिखित पंक्तियां पढ़िए :

> "जब दरवाज़ा खुला तो हमने देखा कि अंदर एक तख़्तपोश बिछा है और सफ़ेद चमकीली चादर पर गावतकिए के सहारे एक हड्डियों का ढांचा आलती-पालती मारे हुए पूरी आंखें खोलकर हमारी तरफ़ देख रहा है...उस बड़े तख़्तपोश पर उस हड्डियों के ढांचे के इर्द-गिर्द सफ़ेद चमकीली चादर पर सुनहरी जिल्दों वाले कुर्आन, सचित्र गीता और ग्रंथ साहब की भारी जिल्दें सजी थीं और सामने वाली पंक्ति में भगत, कबीर, मीरा बाई और वारिस शाह जैसे ढाल बने खड़े थे।
>
> "कहां गए कार्तिक का उधार लेने वाले ? कोई सामने आओ ना ?" मैंने लोगों के ठठें मारते हुए समुंदर पर निगाह की।
>
> "कोई आओ न। आते क्यों नहीं ?"
>
> उसके एक ओर ढलके हुए सफ़ेद लच्छेदार बाल चौड़े माथे पर झूल रहे थे और उसकी खुली आंखें देखकर यों महसूस होता था जैसे अभी अपना झुका हुआ सिर उठाएगा और हाथ जोड़कर कहेगा—ॐ नमः शिवाय-ॐ नमः शिवाय...
>
> हम बड़ी देर रुके रहे, उसके इर्द-गिर्द, घेरा तंग किए हुए। फिर किसी ने डांटकर कहा—"चलो बच्चा लोग चलो, तुम्हारा खेल खत्म हुआ।"

उनकी कहानियों में दृश्य चित्रण का अंदाज़ भी पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता है और वे चंद वाक्यों में ही उन्हें यों बयान कर देते हैं कि दिल पर पूरा दृश्य अंकित होकर रह जाता है जैसे :

> "नौबत की आवाज़ गलियों की भूल-भुलय्यों में भटक रही थी। मैं उसकी उंगली थामे बिना सोचे-समझे दरबार की तरफ़ चल पड़ा। लोगों के जत्थे उस तरफ़ रवां थे। गले में रूमालों की जगह नए दस्तरख़ान लपेटे चिरचिराती चप्पलों के साथ हर क़दम पर बल्लम और अंकित लाठियां टेकते, माहिए की तानें उचकाते हुए, वीरु ताजे बाजे के गांव वाले, उनके दरमियान फांटदार कुर्ता पहने एक नौजवान तेल से चुपड़े गलमुच्छों पर हाथ फेरता हुआ लम्बे-लम्बे डग भरता उनके आगे चल रहा था।"

इन चंद पंक्तियों में गांव के उत्सवों और पर्वों में शरीक होने वाले ग्रामीणों का एक सम्पूर्ण दृश्य खींच दिया गया है जिससे केवल गांव से संबंधित व्यक्ति ही लुत्फ़ उठा सकते हैं और शायद शहरों में रहने वाले इस वातावरण से अपरिचित होने

के कारण इसके आकर्षण और महत्व को न समझ सकें। इसी प्रकार "गुमशुदा कलमात" की निम्नलिखित पंक्तियां भी इस शैली का एक अच्छा नमूना हैं :

> "मुग़लों के हुजे में फेके काका के गिर्द-गिर्द सब जमा हो रहे थे और वह खाट पर बैठा सामने को आधा झुका हुआ, रुक-रुक के खांस रहा था। किसी ने उसका मोटा खुलधला धो दिया था। पहले वह उसे पहनाया गया जिसमें धुलने के बाद खास तरह की कठोरता आ गई थी। काका के चेहरे और हाथों की झुर्रियां कपड़ों की कठोर सलवटों में एक हो गई थीं। फिर किसी ने उसके गले में ज़र्द रंग का नया दस्तरखान बांध दिया और हाथ में रखने के लिए अंकित हाकी जिस पर पिन्नियां और कोके लगे हुए थे, फेके काका के घुटनों के बीच रख दी, ऊपर उसका सफ़ेद सिर दायें-बायें झूल रहा था।"

इसी तरह किसी व्यक्ति या घटना के वर्णन में छोटी-छोटी बातों की भी उपेक्षा नहीं की गई और बाज़ जगह तो हमारे पुराने दौर के दास्तानगोओं की भांति आपादमस्तक का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है जैसे :

> "नोकदार तिल्लेदार जूतियों को ढांपे हुए कली की शलवार जिसकी पीली धारियां ऊपर उठकर कमीज़ में गुम हो गई थीं। गले में झमझमी का दोपट्टा ठहर नहीं रहा था, माथे पर दोनों तरफ़ सुनहरी तावीज़, जिनके पीछे गुंधी हुई मेंढ़ियों को कनफूलों ने ढांप रखा था। नाक में एक तरफ़ चार गुल का फूल और सामने होंठों पर सोने की बुलाकड़ी, गले में सुर्ख़ गानी, कानों में मुंदरे और मुंदरों तक आती हुई लखतेई, उंगलियों में चांदी के बिरहाले जिनमें घुंघरू हरदम व्याकुल थे। अभी चांदी के चूड़े गोरे बाजुओं पर लपेटने बाकी थे। उनके साथ ही अंदर दरी पर सुर्ख़ फुम्मन वाले बाजूबंद और अंगूठों के छल्ले और बराबर की उंगलियों की सुथियां पड़ी रह गई थीं।"

यद्यपि हामिद बेग की बाज़ कहानियों की रहस्यमयता और प्रतीकों एवं रूपकों ने उन्हें कहीं-कहीं जटिल और पेचीदा बना दिया है लेकिन संपूर्णतः उनकी कहानियों में अपनी धरती से नाता सदा कायम रहा है और जीवन के निकट होने के कारण उनमें कहीं-कहीं तो क्लासकियत का रंग भी उभर आता है। वे अपने अतीत की परम्पराओं और गुज़रे हुए ज़माने के व्यक्तियों और स्थानों को ही नहीं अपने वर्तमान को भी अपने सामने रखते हैं। इसके अतिरिक्त वे मानव चेतन और उससे संबद्ध इंसानी रवैयों के साथ-साथ ग्रामीण जीवन, जमींदारों और जागीरदारों की झूठी शान और ग़रीबी में जकड़े निम्न वर्ग के शोषण के वर्णन से भी अपनी कहानियों को बुनते हैं जिनमें कहीं वर्ग-भेद की गूंज सुनाई देती है तो कोई लोभ और लालसा का शिकार इंसानी ज़ेहन दौलत की प्राप्ति के लिए पागलपन की हद तक भटकता नज़र आता है।

नंद किशोर विक्रम

अनुक्रम

इंतज़ारगाह

मैं जहां हूं, उस आबादी की अधिकतर बड़ी-बूढ़ियों का नियम है कि सरेआम चादरों और सफ़ेद बुर्कों में लिपटी-लिपटाई अपने घरों से निकलती हैं और गिरती-पड़ती पूर्व की ओर खड़ी तराई में उतर जाने वाली ढक्की तक आकर पहरों चुपचाप बैठी रहती हैं। अपनी धुंधलाई हुई आंखों पर दोनों हथेलियों की छाया किये नीचे तराई में जाने क्या ढूंढ़ती रहती हैं। पूछो तो बताती नहीं, और यूं ही पहरों प्रतीक्षित बैठकर वापस हो लेती हैं।

नीचे तराई में आबादी से कोस भर के फ़ासले पर एक छोटे से पथरीले मैदान को सुर्ख ईंटों की चुनी हुई मनुष्य के क़द के बराबर दीवार ने चारों तरफ़ से घेर रखा है और बस। इस पथरीले घेराव का आबादी के रुख पर एक ही बड़ा दरवाज़ा है जो हरदम खुला रहता है और इस चारदीवारी में से बाहर निकलते मैंने कभी किसी को नहीं देखा।

एक ज़माना था जब इस चारदीवारी के अन्दरूनी मामलात की देखभाल और आबादी की ओर उसमें जुड़े हुए लोहे के दरवाजे को खोलने और बन्द करने के लिए कई व्यक्तियों पर आधारित बाकायदा एक अमला नियुक्त था।

उस पथरीले घेराव में क़ैद जंगली सूअरों का एक रेवड़ था, जिसे किसी पल चैन न था। खुरों से पथरीले मैदान को उधेड़ते न थकते थे। अलबत्ता अपने सामने वाले के इन्तज़ार में घुलते हुए सूअरों के रेवड़ की बेचैनी ने सारी बस्ती की शांति लूट रखी थी। इस भरी-पूरी आबादी में कोई भी तो ऐसा नहीं था जिसे मुकाबले के दिन और तारीख की जानकारी होती।

उस पथरीली चारदीवारी पर तैनात अमले का जब कोई व्यक्ति अपने खच्चर पर खाली बोरा संभाले बस्ती से सौदा-सुलफ समेटने की खातिर आबादी का रुख करता तो उसे पूर्वी ढक्की चढ़ते ही बच्चे घेर लेते और मुकाबले का दिन और तारीख मालूम करते। देखते ही देखते उसके चारों ओर लोगों का ठठ् का ठठ् जम जाता,

यहां तक कि खच्चर सवार को अपने चारों तरफ़ चाबुक लहरा-लहराकर बाज़ार में से गुज़रने का रास्ता बनाना पड़ता। वह हर सवाल के जवाब में चुप रहता और अपने काम से मतलब रखता।

यह दशा उस वक्त तक रहती जब तक कि वह बाज़ार में घूम-फिरकर अपने लदे-फदे खच्चर की बागें थामे ढकी न उतर जाता। शायद सूअरों के रेवड़ की देख-भाल पर तैनात कर्मचारियों के कर्तव्य-पालन में चुप रहना भी शामिल था। सो, वे आते, बेचैन हुजूम के सवालों के जवाब में खामोशी के साथ सौदा-सुलफ समेटते, चाबुक लहराते लदे-फदे खच्चर के आगे जमाकर कदम रखते तराई में उतर जाते।

अजीब बात थी कि जिस दिन ख़च्चर सवार आबादी की तरफ़ फेरा लगाता उसके अगले रोज़ आबादी में से पांच जवान लापता हो जाते। लेकिन मुश्किल तो यह थी कि मुकाबले के विशेष दिन से पहले किसी को इस पथरीले घेराव की ओर जाने की इजाज़त नहीं थी और उस विशेष दिन का पूरी आबादी में किसी को ज्ञान नहीं था।

उनके ढकी चढ़ने का कोई वक्त तय नहीं था इसलिए आबादी के लोग लोहा कूटने, बान की लच्छियां बनाने, चाक घुमाकर कूजे तराशने, कोल्हू में सरसों पेरने और कपड़ा काटने वाली खड्डियों को चालू रखने में जुटे रहते और बेकार व नाकारा बूढ़े दिन भर बैठे तम्बाकू पीते रहते, ले-देकर बच्चे रह जाते थे जो आबादी में स्कूल न होने के कारण पूर्वी ढकी पर मंडराते रहते थे और जब खाली बोरा संभाले खच्चर सवार आबादी का रुख करता तो उसे घेर लेते। तब "सरड़-सरड़" उनके सरों पर चाबुक लहराता और वे बच-बच जाते।

यह सब क्या था ? इस राज़ की हकीकत जानने की खातिर मैंने अपने बचपन और लड़कपन का अधिकतर समय रोते और विरोध करते गुज़ार दिया।

मैं बहुत ही शर्मिन्दा हूं कि मेरा बचपन और लड़कपन इस पथरीले घेराव की वास्तविकता जाने बिना बीत गया और बाकी वक्त मैं सब कुछ जानते-बूझते हुए चुप रहा। किन्तु मुझे इस बात का गर्व भी है कि इस भरी-पूरी आबादी में शायद मैं ही एक ऐसा बुड्ढा बचा हूं जिसे उस पथरीले घेराव में अपने खुरों से ज़मीन उधेड़ते सूअरों के रेवड़ की असल हकीकत मालूम है। मैं इस खतरे के कारण कि आज हूं और कल नहीं रहूंगा, आपको इस राज़ में सम्मिलित कर रहा हूं।

यह वास्तव में एक ऐसी शाम का किस्सा है जब मैं और मेरे बचपन के दो साथी फीका और कीमा बाहर कोट वालों की शादी की रौनक देखने के बहाने सबको जुल देकर छुपते-छुपाते इस पथरीले घेराव की ओर उतर गये थे। हमने तराई उतरने से पहले अपनी चप्पलें उतार ली थीं और बिना कोई आवाज़ पैदा किये अंधेरे में उतरते चले गये थे !

वह विचित्र रात थी। आसमान पर छिदरे बादलों की आवारा टुकड़ियां चांद

के चेहरे को कभी तो पूरी तरह ढांप देतीं और कभी दूर से सहज-सहज उसकी ओर बढ़ते हुए सिर्फ अपने दामन को उसकी ओर लहराकर परे निकल जातीं।

फागुन की क्या तारीख थी ठीक तरह याद नहीं लेकिन इतना ज़रूर याद है कि जब हम तीनों, अन्दर कोट के शहीद बाबा के मज़ार पर इकट्ठे हुए थे और तराई उतरने का प्रोग्राम बनाया था तो हम तीनों के जबड़े सर्दी से खट-खट बज रहे थे और ठीक तरह बात मुंह से निकलती नहीं थी।

तराई उतरकर उस पथरीले घेराव तक कोस भर का सफर हमने मिनटों में तय कर लिया था। मुझे अच्छी तरह याद है जब हम हवा में तैरते हुए एक के बाद एक उस लाल ईंटों की मनुष्य के कद के बराबर दीवार तक पहुंचे थे तो मोटे ऊन के स्वेटर और गाढ़े की शलवार-कुर्तों में हम तीनों पसीने में नहाये हुए थे और दिल सीने में समाता नहीं था।

बाहर कोट वालों की शादी पर मुजरे की महफ़िल जमी थी और हमें जाने क्यों यह विश्वास था कि पथरीले घेराव पर तैनात पूरे का पूरा अमला वहां से अनुपस्थित है। यह विचार हमारे मस्तिष्क में शायद इसलिए समाया कि हमें तराई उतरते और लाल ईंटों की दीवार तक आते किसी ने रोका न था।

हमने इस अधकचरे विचार में लापरवाही बरती। एक अवसर पर फीके का पैर रपट गया और वह औंधे मुंह नीचे आ रहा। इस गलती का एहसास उस वक्त हुआ जब सर्द अंधेरे को चीरती हुई पक्की बन्दूक की दो गोलियां कीमे और मेरे सरों पर से गुज़र गईं। भला ऐसा हुआ कि उस वक़्त बदलियों ने चांद के चेहरे को ढांप रखा था और वह फागुन की ऐसी सर्द रात थी जिसमें पथरीले घेराव के कारिन्दों ने पड़ताल को ज़रूरी न समझा या शायद एक दिन ऐसा होना ही था, वरना आज मैं यह गड्डमड्ड तहरीर क्यों छोड़कर मरता, कीमे और फीके की तरह इस राज़ को छाती में संभाले अपनी क़ब्र में उतर जाता।

खैर, बन्दूक दग़ने के बाद देर तक ड्यूटी पर मौजूद कारिन्दे एक-दूसरे से ऊंची आवाज़ में पूछगछ करते रहे और फिर चुप की भारी चादर तन गई। हम दीवार की ओट में दम साधे पड़े रहे थे। ऐसे में यूं महसूस हुआ, जैसे कई मौसम आये और बीत गये। हममें उठने की क्षमता ही नहीं रही थी।

रात के दूसरे पहर में इस पथरीले घेराव के अन्दर अचानक भगदड़ की स्थिति पैदा हुई और हमें घुटी-घुटी इन्सानी चीखें सुनाई दीं। लेकिन यह सब कुछ थोड़ी ही देर के लिए था। उसके बाद ऐसा महसूस हुआ जैसे अन्दर के जंगली प्राणियों को सरकारी कारिन्दे हांकने में लग गये और यह प्रक्रिया बहुत देर तक जारी रही।

रात का आखिरी पहर होगा जब मैंने हिम्मत करके कीमे और फीके के सहारे उस पथरीले घेराव के अन्दर झांककर देखा।

आसमान पर फैली बदलियों में से चांद की हल्की रोशनी में पथरीले घेराव

पर तैनात अमला सूअरों के रेवड़ को घेराव के दूसरे अर्द्ध में हांकने के बाद कटे-फटे मानव शरीर की टांगों में रस्सियां बांधकर खींचे लिए जा रहा था। उन बेतरह उधड़ी हुए लाशों को, वे मेरे देखते-देखते घसीट ले गये। उस वक्त रौंदे जाने वालों की पहचान मुश्किल थी लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है कि वह कटे-फटे शरीर गिनती में पांच थे।

उस समय मैं कीमे और फीके के सहारे खड़ा था और मैंने अपने दोनों हाथों से दीवार को मजबूती से थाम रखा था। लेकिन मैंने जो कुछ देखा, उसने मेरे हाथ-पांव शिथिल कर दिये और मैं नीचे की ओर ढहता चला गया। उस समय कीमे और फीके ने बिना कोई आवाज़ पैदा किये बड़ी हिम्मत के साथ मुझे नीचे उतारा।

अगले रोज़ फीका और कीमा जब मेरा पता करने मेरे घर आये तो मैं बुखार में बुरी तरह फुंक रहा था और उनके आने से पहले बेहोशी की हालत में रात की घटना अपनी मां को सुना चुका था।

वह सच्चरित्र प्राणी फीके और कीमे को अन्दर मेरे पास ले आई और हम तीनों से अपनी कसम देकर यह वादा लिया कि हम रात वाली बात किसी से नहीं कहेंगे। शुक्र ऊपर वाले का कि हम तीनों ने उसके जीते-जी अपना वादा निभाया लेकिन इस शर्मिन्दगी का क्या करूं जिसने मुझे और मेरे साथियों को अन्दर ही अन्दर दीमक की तरह चाट लिया।

मैंने जो कुछ देखा व सुना हूबहू लिख दिया। रंगीन बयानी में कभी दिलचस्पी नहीं रही और सच पूछें तो बात से बात पैदा करने की इस फकीर को तौफीक ही नहीं मिली।

आबादी की ओर खुलने वाले उस भारी लोहे के दरवाज़े को खोलने और बन्द करने वाला अमला न रहा। खच्चर पर खाली बोरा संभाले "सरड़-सरड़" चाबुक लहराने और ढकी चढ़ने वाले न रहे। लोहा कूटने और चाक पर भुरका बनाने वाले मिट्टी में मिट्टी हुए। अब तो सरसों की जगह जाने क्या कुछ चल निकला और खड्डियों की जगह बड़े-बड़े कारखानों ने ले ली है, लेकिन यह क्या आश्चर्य की बात नहीं कि इस बची-खुची आबादी के आसार मेरे कहे-सुने का समर्थन करते हैं और हमारी बड़ी-बूढ़ियां अपनी आंखों पर दोनों हथेलियों की छाया किए अपने जिगर के टुकड़ों की राह तकती हैं।

आवाज़ें

नई पीढ़ी अपने बूढ़ों से सुनती आई है कि ऐसा होता है।

कब होता है ? क्योंकर होता है ? कुछ पता नहीं, बस होता है।

कोई पुकारता है।

और सदियों के फैलावों में, यों ही क्षण भर के लिए वक्त करवट लेता है और बस—हम तो आवाज़ के रुख पर सफर करते हैं।

उस रोज़ भी यही कुछ हुआ।

जब मैं ड्यूटी पर पहुंचने के लिए अपने घर से निकला था और मेरे कदम, हस्पताल की बजाय रेसकोर्स की तरफ निकल जाने वाले रास्ते पर उठ गए थे। यह मेरा उस शहर में पहला दिन था और मैं चहल-कदमी करता हुआ बेखयाली में भटक गया था।

मेरे लिए वह रास्ता नया था पर जैसे कोई खींचे लिए जाता था। उस दिन आकाश साफ था और मैं शहर के कोलाहल से दूर आवारागर्द हुआ बहुत दूर निकल गया था।

रेसकोर्स की तरफ से पसीने में लथपथ हारे घोड़ों पर चुस्त जोकी लांग बूट और छज्जे वाली टोपियां पहने पंक्तियों में वापस लौट रहे थे और मैं एक तरफ हटकर खड़ा, एक उजाड़ बंगले के पिछवाड़े अकेला रह गया था।

मैं वहां कितनी देर रुका हूंगा, कुछ पता नहीं। बस इतना याद है कि सड़क पर दूर-दूर तक कोई नहीं था और वह प्राचीन शैली का भवन गहरी खामोशी में डूबा हुआ था। मैं वापस मुड़ चला था कि पीछे से दौड़कर आते हुए एक बौखलाए हुए बच्चे ने मेरा रास्ता रोक लिया।

"क्या आप डॉक्टर हैं ? ज़रा मेरे साथ आएं!"

मैं इंकार नहीं कर सका और उस तेज़ कदम उठाते और हवा में तैरते हुए बच्चे के पीछे कठिनाई से घिसटता चला गया। उस उजाड़ बंगले की सीमा गुज़ार

कर हम दोनों अंदर दाखिल हो गए। लम्बी चुंगियों पर वह मेरा पथ-प्रदर्शन करता हुआ हवा के कांधों पर उड़ रहा था। फिर वह मुझे उस भवन के लम्बे अर्द्ध-अंधेरे दालान से गुज़र कर एक हाल की तरह के कमरे तक ले गया जहां दोहरे पलंग पर सफ़ेद कम्बल में लिपटी-लिपटाई एक महिला यमयातना की अवस्था में पड़ी थी।

वह निःसंदेह तीस साल से ज़्यादा की नहीं रही होगी लेकिन उस समय तो वह हड्डियों का एक ढांचा थी और उसका श्वांस उखड़ चला था। मैंने चारों तरफ़ नज़र डाली, उसकी परिचर्या के लिए कोई नहीं था परंतु वह हवा के कांधों पर सवार लड़का...।

मुझे रोगी में जीवन की ज़रा-सी आशा नज़र नहीं आई और यह कि उस समय मेरे पास सिवाय स्टेथेस्कोप के और कुछ भी नहीं था। मैंने उस लड़के को कुछ आवश्यक आदेश दिए और दवाइयों की पर्ची लिखकर तिपाई पर रखते हुए बोझिल क़दमों के साथ बाहर निकल आया।

हस्पताल के हंगामे में मुझे वह रोगिणी नहीं भूली लेकिन मैं वहां नया-नया था और मेरे आगमन से संबंधित लिखत-पढ़त उकता देने वाली थी। फिर नये साथियों से परिचय का सिलसिला विस्तार पकड़ गया और मैं इच्छा के बावजूद उस तरफ़ दोबारा देख-रेख के लिए नहीं जा सका।

उस घटना को कुछ ज़्यादा दिन नहीं हुए थे और मैं भूल-भाल गया था।

आख़िर क्या कुछ याद रखा जाए। हम लोगों के साथ तो प्रायः ऐसा होता चला आया है लेकिन सुनते हैं कि शताब्दियों के फैलाव में कभी यों ही क्षण भर के लिए समय करवट लेता है और बस। कोई पुकारता है और हम आवाज़ के रुख पर सफ़र करते हुए कहीं से कहीं जा निकलते हैं।

मैं नियम अनुसार हस्पताल में पहली शिफ्ट भुगताकर, थका-टूटा हुआ घर लौटा था कि एकाएक आभास हुआ जैसे कुछ भूल रहा हूं। कोई बात, जो बहुत ज़रूरी थी। कोई काम जो रह गया या जैसे किसी से मिलना था और नहीं मिल पाया था।

यों ही कमर सीधी करने को लेट गया लेकिन एक अजीब प्रकार की बेचैनी थी जो किसी करवट चैन न लेने देती थी। सामने मेज़ पर स्टेथेस्कोप चमक रहा था और आपस में उलझे हुए गर्भ दस्ताने उसके साथ धरे थे। सफेद ऐपरन अलबत्ता उतारकर रखना याद नहीं रहा था, सो वह पहने हुए था।

एक अजीब प्रकार की व्याकुलता थी। हस्पताल से निकलते समय भी मैं बहुत जल्दी में था और दस मिनट पहले ही उठ आया था जैसे घर पर कोई ज़रूरी काम हो लेकिन घर पहुंचकर फिर वही व्याकुलता। बस जैसे कोई काम था जो होने से रह गया था या जैसे किसी से मिलना था पर किससे मिलना था ? कोई भी तो

नहीं था।

मैंने कहा ना कि वहां मेरी जान-पहचान न होने के बराबर थी। आबादी में कोई भी तो ऐसा नहीं था जिससे मेल-मुलाकात रही हो। हस्पताल के सारे स्टाफ़ से कुछ दिन पहले और ज़िंदगी में पहली बार मिला था लेकिन इन शताब्दियों के फैलाव में कहीं अनजाने में किया हुआ एक वादा था, जो रह-रहकर याद आता था। वह बात, जो किसी से कहनी थी और कह नहीं सका था, कोई काम जो पूर्ति चाहता था मगर उस समय तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था।

मैं उठ खड़ा हुआ। मेज़ की सारी दराजें खोलकर एक-एक कागज़ का पुर्ज़ा पढ़ डाला। किताबें उलट-पुलट दीं। पहने हुए कपड़ों समेत अल्मारी में टंगे हुए कपड़ों के छोटे-बड़े जेब देख डाले। किचन में जहां मैंने आज तक आग नहीं जलाई थी, हो आया। बाथरूम में टूथपेस्ट और ब्रश के साथ ताज़ा खोली हुई साबुन की टिकिया और बाल्टी पर टंगे हुए मग के अलावा सिर्फ़ एक बल्ब रोशन था, जो कुछ ही देर पहले मैंने खुद जलाया था। बाल्कनी की रेलिंग खाली थी और हैंगर पर मेरी अर्द्ध खुश्क कमीज झूल रही थी। सब कुछ अपनी जगह पर था। लेकिन कुछ था जो नियम से हटकर था। मैंने सब कुछ उसी तरह पड़ा रहने दिया और मेज़ पर से स्टेथेस्कोप और दस्ताने उठाकर ऐपरन में ही बाहर निकल गया।

मैं हस्पताल की तरफ़ लौट जाना चाहता था ताकि वहां भी जाकर इत्मीनान कर सकूं लेकिन मेरे कदम रेसकोर्स की तरफ़ निकल जाने वाले रास्ते पर उठ गए। मैंने बहुत चाहा कि उस वीरान सड़क पर न जाऊं लेकिन कदम थे कि रोके नहीं रुकते थे। मैं जानता था कि वहां अब कुछ भी नहीं रह गया होगा, पर मैं चलता गया। दूर-दूर तक कोई नहीं था और सड़क के दोनों तरफ़ सफेदे के पतले पेड़ छतरी बने खड़े थे। मैं दायें तरफ की कांटेदार तारों की बाड़ और बायें तरफ़ के खामोश किंतु आबाद घरों की पंक्ति से गुज़रकर उस उजाड़ बंगले की सीमा तक पहुंच गया। मैं शायद रेसकोर्स की तरफ़ दूर खुले में निकल जाना चाहता था मगर मेरे पांव बोझिल होते गए और मैं एक बार फिर उस वीरान बंगले के गेट पर चला गया।

उस समय खासी रोशनी थी और अस्र (शाम) की नमाज़ की अज़ान अभी नहीं हुई थी। मैं जाने कितनी देर वहीं ठहरा रहा फिर मैंने रेसकोर्स जाने का इरादा छोड़ दिया और जंग लगे लोहे के गेट को अंदर की ओर धकेलकर उस पक्के रास्ते पर चल निकला जिसकी सुर्ख ईंटें रात की वर्षा ने धो डाली थीं। मैंने देखा कि आपस में उलझती और हर तरफ़ फैलती हुई घास की कटाई को एक समय हो चला था। और पीली मटियाली गीली घास पर गीले पत्तों के अंबार लगे थे। पक्के रास्ते के दोनों तरफ़ अंजीर और चिनार की पंक्तियों में किसी राजहंस की चीख़ मेरे लिए मार्ग बनाती चली जा रही थी। शाम की बहती हवा में अभी हलकी-हलकी ठंडक का आभास बाकी था और मैं अपनी धुन में अर्द्ध-अंधेरे बरामदे की सीढ़ियों

तक जा निकला था।

एकाएक खांसता-खंखारता एक साया बरामदे की सीढ़ियां उतरकर मेरे सामने आ ठहरा।

"साहब !...किस तरफ़ जाना है आपको ?" बूढ़े चौकीदार ने अपनी सांस दुरुस्त करते हुए कहा।

"यहां एक रोगी को देखने आया था मैं—बहुत दिन हो गए। फिर आना ही न हुआ इस तरफ़..." मैंने जवाब में कहा और सीढ़ियां चढ़ने लगा।

"जी...कब की बात कर रहे हैं आप ? यहां तो कोई नहीं रहता। मुझे यहां चौबीस वर्ष हो गए चौकीदारी करते हुए...हां मुझसे पहले शायद..."

"अच्छा, लेकिन मैं तो यही कोई हफ़्ता-पंद्रह दिन पहले आया था यहां"—मैं वहीं ठहर गया।

"साहब...भूल रहे हैं आप। मैं तो रात-दिन यहीं हूं। अलबत्ता कभी बाज़ार तक हो आता हूं, और बस..."

मैं उससे क्या बहस करता।

कुछ समझ में नहीं आ रहा था और मैं वहां से चल दिया लेकिन मेरे पांव लड़खड़ा रहे थे। ऐसे में उसने मुझे संभाला और दो घड़ी वहीं रुक जाने को कहा। वह और जाने क्या कुछ कहता रहा था लेकिन मैं कुछ भी तो नहीं सुन पा रहा था। कुछ देर बाद, मैं उसके पीछे दालान की सीढ़ियां चढ़ गया।

अंदर का अर्द्ध-अंधेरा रास्ता मेरा देखा भाला था। और वह मुझे दालान से गुज़ारकर ड्राइंगरूम की तरफ़ ले जाना चाहता था लेकिन मेरी नज़रें हाल की तरह के कमरे की खोज कर रही थीं। फिर मैं चलते-चलते ठिठककर एक पीतल जड़े बड़े लम्बे-चौड़े दरवाज़े के सामने ठहर गया और उसने मेरे आग्रह पर द्वार खोल दिया।

मैंने देखा कि खाली कमरे में दोहरे पलंग पर सफेद उजला कम्बल तह किया रखा है और बस। मैंने खामोशी के साथ आगे बढ़कर तिपाई पर से अपने हाथ का लिखा हुआ नुस्ख़ा उठा लिया। उस पर चंद रोज़ पहले की तारीख दर्ज़ थी।

मैं चौकीदार से क्या बहस करता। कुछ देर बैठकर चला आया।

जब बाहर निकला हूं तो याद आया कि चौकीदार से उस हवा के कंधे पर सवार लड़के के बारे में पूछना तो मैं भूल ही गया। बाहर के खामोश सर्द रास्ते पर से गुज़रते हुए मैंने ऊपर निगाह की जहां अंजीर और चिनार के पेड़ों पर अनगिनत सितारे झुक आए थे और साफ़ काले आकाश पर ठहरे हुए चांद का रंग पीला था।

कार्तिक का उधार

उसके आने का यूं तो कोई वक़्त और मौसम निश्चित न था लेकिन गुलाबी जाड़ों में उसका पहुंच जाना जैसे तय था। कार्तिक का महीना चढ़ता और फसलें समेट ली जातीं तो उसका इन्तज़ार जैसे आरम्भ हो जाता और फिर अचानक किसी दिन वह आ निकलता बिना किसी पूर्व सूचना के, और पूरी आबादी उसे घेर लेती। एक भीड़ इकट्ठा हो जाती और वह अपना काम निपटाकर पलट जाता। मौसम एक के बाद एक गुज़रते रहते। दिन, हफ्ता और महीना कुलांचें भरते हुए दूर निकल जाते और उनके पीछे धुन्ध गहरी होती चली जाती।

फिर अचानक किसी दिन, कोई उसका वर्णन करता ! हवेलियों में बड़ी-बूढ़ियों और हुजरों में साल खुर्दह सफेदपोश वृद्ध कहते, कार्तिक का महीना चढ़ गया, बस अब वह आने वाला होगा। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों में वह आया था, पर जाने इस बार क्यों नहीं आया ?

गत वर्ष इन्हीं दिनों कौन आया था ? हम आपस में खुसर-फुसर करते लेकिन किसे याद रहता था उन दिनों वर्ष के वर्ष आने वाले का नैन-नक्श।

हुजरे में बड़े-बूढ़े हमारी खुसर-फुसर पर डांट पिलाते और हम चुपचाप अपने-अपने स्थानों पर सिमट-सिकुड़ जाते। फिर उसका वर्णन बहुत देर तक होता रहता और हम अपने-अपने स्थानों पर गठरी बने नींद की शान्तिदायक वादियों में उतर जाते।

"बेटा जाग जाओ, आज जाना नहीं क्या ?"

"जाना है, जाना है।"

मुंह अंधेरे जगाने वाले की आवाज़ सुनकर जान ही निकल जाती ! मरी हुई आवाज़ में जी हां, जी हां करते, स्लीपर पहन मस्जिद में गर्म पानी के हौज़ का रुख करते। उस समय गली में कुएं की तरफ निकल जाने वाली गहरे घूंघट काढ़े हुए स्त्रियों की लाइनें पीतल की गगरियां थामे स्नान के लिए गुजर रही होतीं और मस्जिद में नमाज़ी वज़ू करने में व्यस्त रहते।

"चाचा—हम भी—"

"आहा स्कूली बच्चे आ गये ! आओ भाई आओ तुम्हें दूर जाना है, तुम पहले मुंह-हाथ धो लो।" वजू करने वालों का झुंड का झुंड गर्म पानी की टोंटी पर हमारे लिए स्थान बना देता और हम लपक-झपक दो-दो छींटे पानी के मुंह पर मार यह जा, वह जा। लालटेन की मद्धिम रोशनी में ठप-ठप परांठे तलने की आवाज़ सुनकर अपनी अधपुती तख्तियों और पुस्तकों के गट्ठर में दिन का खाना समेटते, दो-दो लुग्मे खाकर पानी का घूंट लेते निकल खड़े होते।

आज देर हो गई।

यूं लदे-फदे निकलते और गलियों में हांका देते जाते।

"ओ केमे, ओ चन्दो, ओ फेके के बच्चे, हे गोपाल जाना है कि नहीं ?"

"चाची सलाम—बेजी प्रणाम—तायाजी नमस्ते।"

"जीते रहो, मां का कलेजा ठंडा रहे।"

उन दिनों जैसे सब जल्दी में थे। ऐसे में किसे याद रहता कि कौन आने वाला था जो इस बार नहीं आया।

हम हल्के जाड़ों की पुरवा को खुले सीने पर सहते नाक सुड़कते, गलियों और खलियानों पर कन्चे व आखरोट खेल रहे होते कि अचानक किसी दिन वह आ निकलता—सब कहते, देखो वह आ गया, गांव की गलियों में उसकी सुरीली आवाज़ गूंजती—

"कुरान मजीद, सीपारे ले लो, गीता-गुरुग्रंथ ले लो, कातिक के उधार पर ले लो" हम सब कुछ छोड़-छाड़कर उधर लपके। गर्द-मिट्टी से अटे हुए उसके सिर के सफेद लच्छेदार बाल विस्तृत माथे पर झूल रहे थे और वह अपनी लदी-फदी सायकिल के साथ हमारे सामने था।

"आप आ गए ?" हम सब मिलकर पूछते।

और उत्तर में वह अपना झुका हुआ सिर और उठाता, "हाजिर हो गया जी।"

"इस बार क्यों देर कर दी आपने ? हवेली और हुजरे में सब आपको याद करते थे।"

"बस आ गया बच्चा, जैसे-तैसे पहुंच गया।"

"छोड़ें जी, आज आ गए इतने दिन बाद।"

"अरे भागवान—आ जो गया—खुश हो जाओ।"

"नहीं आना होता तो न आया करें, इन्तज़ार क्यों करवाते हैं ?"

"ओम नमः शिवाय—ओम नमः शिवाय।"

वह हमारे सामने दोनों हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए अपनी सायकिल वहीं रोक देता। हमारी निगाहें सायकिल के कैरियर पर बंधे भारी गट्ठर का मुआयना करती रहतीं और वह आबादी के केंद्रीय सहदद्दे में गड़ी हुई पत्थर की भारी सिल पर टिककर बैठ जाता, फिर उसके इर्द-गिर्द घेरा तंग होता चला जाता, एक ऊधम-सा मच जाता !

"इसमें क्या है चाचा ?"

"अरे भूल गये, जो कुछ पिछले वर्ष लाया था" वह अपने लच्छेदार सफेद बालों को दोनों हाथों से कंघी बनाकर पीछे ढकेलता।

"पिछले वर्ष क्या लाए थे चाचा ? उसे खोलो ना।"

"खोलता हूं, खोलता हूं ! ज़रा सांस तो लेने दो। बहुत दूर से आ रहा हूं। पेण्डा खोटा करते हुए। दो घूंट पानी के कौन पिलाएगा भला ?" वह थकी हुई मुस्कराहट के साथ हम सबकी तरफ बारी-बारी देखता।

"मैं लाऊंगा।"

"मैं लाता हूं कटोरा भर के !"

"ओम नमः शिवाय।"

हम सब अपने-अपने घरों की ओर दौड़ लगाते, एक-दूसरे से आगे निकलने का जतन करते हुए।

"वह आ गये।"

हां हां, सुन ली है उसकी आवाज़—ज़रा आराम से—देखो धीरे-धीरे डालना पानी—देखो मिट्टी लगी है—कटोरा धोकर ले जाओ।

पानी के तो मात्र दो घूंट ही पीता। दर हकीकत उसे अपना भारी गट्ठर खोलने और पुस्तकें क्रमानुसार रखने के लिए समय आवश्यक होता था जो हमारी आपस की भाग-दौड़ के कारण उपलब्ध होता ! हम जब तक अपने-अपने घरों से पलटते, वह गली में गड़ी हुई पत्थर की सिल पर अपनी दुकान क्रमानुसार लगा चुका था। सफेद बुर्राक चादर पर सुनहरी जिल्द वाले कुरान-मजीद, चित्रित गीता और ग्रंथ साहब की भारी जिल्दें सज चुकी होतीं।

"चाचा यह इतनी सारी पुस्तकें।"

"हां बेटा—लेकिन देखो, इनको छूते नहीं हैं स्नान किये बिना वजू किए बिना।"

"क्यों चाचा ?"

"पाक कलाम है बेटा—पाक कलाम।"

फिर जब तक खांसते-खंखारते हुए बूढ़े उधर का रुख करते, वह हम सब में मुट्ठियां भर-भर कर मुरमुरे और बताशे बांट चुका होता।

"अस्सलाम अलेकुम—नमस्कार—प्रणाम—"

झुक-झुककर सबको अपने थीए पर खुश आमदीद कहता हुआ बिछ-बिछ जाता। उसके बाद जैसे हमारा काम खत्म हो जाता लेकिन हम रुके रहते। उसके गिर्द यदि घेरा तंग किए होते, फिर कोई डांटकर कहता, "चलो बच्चा लोग, चलो तुम्हारा काम खत्म" और हम लोग मुरमुरे और बताशे खाते हुए दायें-बायें सटक जाते हैं।

मण्डपाकार अदसों वाली ऐनकों को संभाले बूढ़े, छोटे और बड़े शब्दों के बखेड़े में पड़ जाते है ! भीगी मसों वाले जवान वारिस शाह की हीर तलब करते।

कोई कहता, "कबीर के दोहे लाने का वादा किया था आपने ?"

"सब लाया हूं बेटा जी, सब लाया हूं।"

"और मैंने मीरा बाई के भजन कहे थे।"

"अरे भागवान—यूं ही नाराज़ काहे को होते हो, यह अलग से बांध रखा है आप लोगों का माल।"

फिर कोई वृद्ध सबको डांट पिलाता, "ए ज़रा दम लो, हट जाओ पीछे, पाक कलाम की बात हो जाये पहले।"

"जी भाई मियां—जी बहन जी—"

यूं गत वर्ष कार्तिक के उधार पर लिए गये सौदे के दक्षिणा का हिसाब झटपट हो जाता। नये लेन-देन का व्यवहार आगामी कार्तिक पर छोड़ दिया जाता और यूं बुड्ढे-ठुड्डे सबसे पहले निवृत होते।

अब बात चलती भगत क़बीर के दोहों, वारिस शाह की हीर और मीरा बाई के गीतों और भजनों की। और यह सब कुछ भी आगामी कार्तिक पर निमट जाता। हम उन बखेड़ों से दूर खलियानों में अपना-अपना लट्टू मुकाबले में छोड़कर, उकड़ू बैठकर उनकी घोंकार सुनने में लीन होते और यह भूल जाते कि उसे मामला निमटा कर पलट जाना है। जब शाम के साये गहरे होने लगते तो हम जल्दी-जल्दी आबादी के सहद्दे का रुख करते और वहां कुछ भी न पाते, यूं एक बार फिर कार्तिक का इन्तज़ार आरम्भ हो जाता।

अगहन, पूस और माघ की सर्दियों तक तो हमें याद रहता कि कौन आया था लेकिन फाल्गुन और चैत में बसंत के हंगामे तन-मन का होश भुला देते। बैशाख से असाढ़ तक की चिलचिलाती लम्बी दोपहरों में छुट्टियों का काम समेटते हुए उसकी कुम्हलाई हुई याद जैसे दिलों में करवट लेती, पर क्या कुछ याद रखा जाय। सावन, भादों में बारिश की झड़ी कुछ इस प्रकार से लगती कि बुद्धि की सलेट धुल-धुलाकर साफ हो जाती। आश्विन के महीने में कोई कहता, अगला महीना कार्तिक का है, पाक कलाम का उधार, दक्षिणा, उपहार तो चुकता करना ही करना है, वह आए तो यह बोझ सिर से उतरे।

कार्तिक चढ़ता तो हम सोचते, गत वर्ष कौन आया था। किसे याद रहता था उन दिनों वर्ष के वर्ष आने वाले का नैन-नक्श लेकिन इस बार सब वृद्ध कह रहे थे कि हालात का कुछ ठीक नहीं, देश का बंटवारा होने वाला है।

उन दिनों हमने गर्मियों की छुट्टियों का स्कूली काम लगभग समेट लिया था और सावन की पहली झड़ी लगी थी। रात का खाना खाकर खड़ाऊं पहने हुए मैं भीगता हुआ जब हुजरे में पहुंचा तो मालूम हुआ कि अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा हो रहा है। उधर भी और इधर भी। किसी ने बताया कि अब उधर से किसी मुसलमान का सही-सलामत लौट आना मुमकिन नहीं। हमारी बस्ती में मुसलमान आबादी अधिक थी इसलिए दूसरे लोग यह खबर सुनकर कुछ सहम से गये। इसके अतिरिक्त रात को हुजरे सभी आते थे। और नित्यानुसार इकट्ठे बैठकर ताज़ातरीन समाचारों पर आलोचना भी करते।

मुझे वह दिन कभी नहीं भूलेगा जब मैं अपने मियांजी की चादर में दुनिया जहां से बेपरवाह उनकी कमर में बाजू डाले, गठरी बना बैठा था और मेरे सामने

वाली चारपाई पर मेरा मित्र बलवन्त अपने बापू की चादर में से मुंह निकाले मेरी तरफ देख-देखकर मुस्करा रहा था। तब एकाएक उसका बापू किसी बात पर बहुत दुखी होकर उठ खड़ा हुआ था और उसने भरे हुए हुजरे से पूछा था—

"यारो मुझे बताओ कि अब हम क्या करें, यह पृथ्वी यदि हम पर तंग होती ही है तब भी बता दो और यदि तुम लोग आज्ञा दो तो मैं अन्तिम व्यक्ति हूंगा जो इस बस्ती को छोड़कर जायगा, लेकिन मैं वाहे गुरुजी का साधन करके कहता हूं कि इस हुजरे में ऐसी बातें न करो हमारे बच्चों के सामने, तुम्हारे रब का वास्ता, न करो ऐसे—"

यह सुनकर सब चुपचाप बैठे रहे, किसी ने कुछ भी नहीं कहा। फिर उन्होंने बलवन्त के कंधे पर हाथ रखा और बोले—"आओ बेटा, चलें, उनको फैसला करने में समय लगेगा" और वास्तव में मैंने देखा कि सबको फैसला करने के लिए बहुत समय आवश्यक था, कोई फैसला ही नहीं करता था।

अगले दिन बलवन्त ने मुझसे पूछा, "क्या फैसला किया पंचायत ने ?"

मैं क्या उत्तर देता, बस चुप रहा, फिर मैंने चुपके-चुपके अलग ले जाकर अपने सारे यारों से पूछा, "तुम जा तो नहीं रहे हो ना ?"

उत्तर में गोपाल, रघुवीर, चन्दू, सन्तोख और रामू सब चुप थे। मैं हैरान था कि हम जो अपनी कोई बात भी एक-दूसरे से नहीं छुपाते थे, जाने इस प्रश्न के उत्तर में क्यों चुप-सी लग गई थी सबको।

हर तरफ से बुरी-बुरी खबरें ही सुनने को मिलती थीं, खेत-खलियान, हुजरा जहां जाओ बंटवारे का हंगामा ही सुनते थे।

एक शाम हुजरे में किसी वृद्ध ने विषय बदलने हेतु केवल इतना कहा, "—सावन तो पड़ गया, रह गये भादों और आश्विन, बस कार्तिक का महीना आया कि आया—" तब जोश भरे हुए नवयुवकों ने जैसे एक जबान होकर उसकी बात काट दी, "इतनी जल्दी क्या है चाचा—इस समय सोचने की और बहुत-सी बातें हैं ! पाक कलाम का उधार तो सोने की मुहर है, जब आयेगा तो चुकता कर देंगे।"

बस इतना ही सुना मैंने और आने वाले के धुन्धले चिह्न बुद्धि में उभरने लगे। फिर जैसे हम सब मित्रों ने अपनी-अपनी कल्पनाओं में उसे घेर लिया ! आबादी के सहद्दे पर—वह हम सबमें मुरमुरे और बताशे मुट्ठियां भर-भरकर बांटने लगा था कि ठीक उसी समय हुजरे में जाने किस बात पर दो वृद्धों में भुक-भुक आरम्भ हो गई और उन्होंने हमें हुजरे से उठा दिया।

अगले दो-चार दिन में मालूम हुआ कि बंटवारा हो गया, पर कैसे ? हमने एक-दूसरे से पूछा, कुछ समझ में न आया। फिर शहर से समाचार मिला कि जहां-तहां लूटमार और छुरा भोंकने की घटनाएं होने लगी हैं। बलवन्त, गोपाल, चन्दू, सन्तोख और रामू अब घर से नहीं निकलते थे ! मैं स्वयं ही उनके पास जाता, केमे और फेके को साथ लेकर।

किसी ने शहर से पलटकर बताया कि वाघा के मार्ग से इधर आने वाले

मुहाजरीन की स्पेशल लूट ली गई। बल्लमों और कृपाणों से सशस्त्र बल्वाइयों ने काटकर रख दिया सारी ट्रेन को। जिस दिन हुजरे में यह समाचार सुना गया उसी शाम पंचायत ने कर लिया फ़ैसला ! नम्बरदार ने घेरा में आदमी भेजकर हुजरे में सब पुरुषों को बुला भेजा। हम सब उन लोगों के आने और फ़ैसला सुनने के प्रतीक्षक बैठे थे। किसी ने कहा, "बच्चा लोग चलो—तुम्हारा काम समाप्त।" और हम लोग हुजरे से उठ आये।

जाने क्या फ़ैसला किया था पंचायत ने—यह सोचते-सोचते सो गया। उस रात सावन टूटकर बरसा था ! रात को ज़ोर से बिजली चमकी तो मेरी आंख अचानक खुल गई। बराबर की चारपाई पर मां नहीं थी और ड्योढ़ी में से स्त्रियों के रोने की घुटी-घुटी आवाज़ आ रही थी।

मैं नंगे पांव बारिश में भीगता हुआ ड्योढ़ी तक गया तो लालटेन के पीले प्रकाश में देखा कि कोने में दीवार के साथ लगकर बलवन्त और गोपाल खड़े हैं। उस समय बलवन्त की माताजी ड्योढ़ी में ठंडे फर्श पर आलती-पालती मारे बैठी रो रही थीं और गोपाल की बीजी, मेरी मां से गले मिलकर जैसे विदा कह रही थीं। मैंने यह सब देखा और चकित खड़ा रहा फिर मियांजी ने गली में से आवाज़ दी, "चलो भाई, देर हो रही है।"

यह सुनकर दोनों स्त्रियों ने रोते-रोते मुझे गले लगाकर प्यार किया और बाहर निकल गईं। गोपाल और बलवन्त चुपचाप उनके पीछे चलते हुए मुझे मिलने की इच्छा से क्षण भर को रुके परन्तु उसी पल बाहर से किसी ने गरजकर कहा "चलो—चलते क्यों नहीं ?" वह दोनों चल पड़े और मैं वहीं खड़े का खड़ा रह गया। मां ने झुककर ड्योढ़ी से बाहर झांका और दरवाज़ा भेड़कर अन्दर से कुण्डी लगा दी। मैं उनके साथ कमरे में आ गया।

"यह लोग कहां जा रहे हैं मां ?" मैंने पूछा, परंतु कोई उत्तर न मिला।

"मां जी से एक बात करनी है मैंने !"

"क्या बात करोगे ?" मां की आवाज़ बैठी हुई थी।

"बस एक बात—"

मां ने अपना चेहरा तेज़ी से दूसरी ओर मोड़ लिया।

"तुम क्या जाग गये ? सो जाओ।"

"गोपाल और बलवन्त इस वर्षा में कहां जायेंगे मां ?"

"सब ख़ैर होगी, तू अब सो जा।"

"लेकिन मां..."

"बस कर अब वे सब लोग जा रहे हैं !"

"सब कौन ?"

"वे सारे, जो अब इधर नहीं रह सकते, तेरे मियांजी और बीस जवान बन्दूकों के साथ उन्हें छोड़ने जा रहे हैं। रक्षा के साथ। हसन अब्दाल से आगे जरनेली सड़क चढ़ाकर आयेंगे उन्हें !"

"और उससे आगे मां ?"

मां ने मुझे दोनों बांहों में भींचकर अपने साथ चारपाई पर लिटा लिया।

"चुप कर जा, बहुत रात हो गई, खैर की दुआ मांग !" मां ने मेरे ऊपर चादर डालते हुए दूसरी ओर करवट ली।

मैंने गोपाल और बलवन्त के लिए दुआएं मांगीं, सारी रात जागता रहा। इस इन्तज़ार में रहा कि सुबह हो तो जाऊं और देखूं कि रघुवीर, चन्दू, सन्तोख और रामू आदि भी तो कहीं चले नहीं गये। मां भी शायद सारी रात जागती रही परंतु वह चुप थी और मेरे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देती थी। मेरी हर बात पर बस इधर से उधर करवट ले लेती ! मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आई तो उठ खड़ा हुआ।

"क्यों ? क्यों उठ बैठा इस समय ?" मां ने पूछा।

"मैं मस्जिद जाऊंगा !"

"स्कूल तो बन्द है बेटा।"

"पर मैं जाऊंगा मस्जिद।"

वह चुप रही और मैं मियांजी की खड़ाऊं पहनकर बाहर निकल आया। हर तरफ कीचड़ भरा था ! मैंने देखा कि रामू के दरवाज़े पर ताला पड़ा है ! फिर मैं सारे गांव में घूम गया। सब दरवाज़ों पर ताला नहीं था। सन्तोख और चन्दू के दरवाज़ों पर बाहर से कुण्डी चढ़ी हुई थी। अलबत्ता रघुवीर के घर का दरवाजा खुला था। उनके आंगन में खड़े शहतूत के पेड़ हल्की हवा में झूल रहे थे और घर में कोई न था। बरामदे में बिछे हुए दीवान पर रघुवीर का अर्द्ध खुला बस्ता रखा था और पुती हुई तख्ती ! घर में सब कुछ उसी तरह था, केवल गृहवासी नहीं थे !

मैं बाहर निकल आया और मस्जिद का रुख किया ताकि मालूम करूं कि ये सब लोग आखिर कहां गये होंगे ! मस्जिद में गर्म पानी के हौज़ पर नित्य की भांति जमघटा था परंतु आज गली में वह पहले वाली बात न थी। नमाज़ी वज़ू तो कर रहे थे परंतु उनके चेहरे एक ही रात में जैसे मुरझा गये थे। मैं हर एक का चेहरा पढ़ने का प्रयत्न करता रहा। क्या यह प्रसन्न हैं ? क्या इनको भी दुख है उन लोगों के चले जाने का ? पर कुछ समझ में नहीं आया।

मैं एक ओर दीवार से लगकर खड़ा था, किसी ने कहा, "स्कूली बच्चे आ गये। आओ भाई आओ, तुम्हें दूर जाना है।..."

"नहीं मैंने कहीं नहीं जाना है। जिन्हें दूर जाना था वे तो चले गये—" मैंने केवल इतना कहा और तेज़ी से पलट पड़ा, बिना मुंह-हाथ धोये, अपने घर की ओर। मार्ग में हुजरा पड़ता था जहां कुछ लोगों को मैंने आपस में सिर जोड़े खुसर-फुसर करते देखा। एक ओर चारपाई पर मियांजी और नम्बरदार रशीद खां बैठे थे, मुझे देखकर मियांजी हैरानी के साथ उठ खड़े हुए—"बेटा स्कूल तो बन्द है ! फिर तुम सवेरे-सवेरे..."

"मियांजी—वे लोग जरनेली सड़क को चढ़ गये थे।"

"हां बेटा—हम उन्हें अपनी सुरक्षा में लेकर गये थे ! मैं स्वयं साथ था परंतु ईश्वर की मर्ज़ी..."

"क्या हुआ मियांजी ?" मेरा दिल जैसे बैठ गया।

"तुम अब घर जाओ, हमें कुछ आवश्यक बातें करनी हैं। मैं आ रहा हूं घर की ओर।"

"परंतु मियांजी—वह—"

"मैंने कहा ना—आ रहा हूं—"

मैंने घर की तरफ जाते-जाते बाकी लोगों के चेहरों की ओर देखा, मैं हैरान रह गया कि उन सबके नैन-नक़्श को रात की तूफानी वर्षा ने जैसे धो डाला था। उनकी मुखाकृतियां जैसे मिट गई थीं। मैं सख्त हैरान था कि इतने सारे लोगों में, मैंने अपने बाप को कैसे पहचान लिया, शायद उनके भारी डील-डौल के कारण या शायद उस समय धुंधलका था और मैं ठीक तरह देख नहीं पा रहा था।

मैं घर की ओर मुड़ा तो मैंने देखा कि गली में मेरे आगे-आगे बहुत-सी स्त्रियां चादरें लिए हुए तेज़ी के साथ हमारी हवेली की ओर जा रही थीं। ये चादरों वालियां इस समय निकलतीं तो हैं घर से, फिर यह आज क्या हुआ उन्हें ? मैं उनके पीछे-पीछे तेज़ी के साथ चलता हुआ अपने घर के आंगन तक आया, जहां चारपाइयों और गीले फर्श पर जैसे सारे गांव की स्त्रियां एकत्रित हो गई थीं।

वे सब चुप थीं और उस समय केवल उनकी गोद में इक्का-दुक्का बच्चों के रोने की आवाज़ आ रही थी। बीच की चारपाई पर मेरी मां सिर झुकाए बैठी थी। मैंने उसके करीब जाकर पूछा, "क्या हो गया मां ?"

"कुछ नहीं तुम अन्दर चलो।"

"पर हुआ क्या है ?"

यह सुनकर मासी जीवा उठी और उसने मुझे अपने गले से लगा लिया, फिर वह ज़ोरों से रो दी। मैं उसके चेहरे की ओर देखता था और पूछता था हुआ क्या है ? बताओ हुआ क्या है ? पर वह कोई उत्तर ही नहीं देती थी।

मासी जीवा रो रही थी और उसे देखकर दूसरी स्त्रियों ने अपने-अपने चेहरे चादरों से ढांप लिए थे और आगे को झुक गई थीं। मैंने केवल उनकी सिसकियां ही सुनीं। मासी जीवा ने मुझे इसी प्रकार अपने सीने से भींचे रखा। फिर बहुत देर बाद उसने केवल इतना कहा—"बेटा तेरे सारे मित्र निमट गये एक ही रात में..."

"कैसे निमट गये ? हुआ क्या है ?"

अब मैं पूरा ज़ोर लगाकर उसकी गिरफ्त से स्वतंत्र हो गया—मैं सब कुछ समझ गया था परंतु फिर भी उनकी ज़ुबान से पुष्टि चाहता था पर कोई बोलता ही न था, बस रोये जाती थीं सारी की सारी।

ड्योढ़ी से जब मियांजी ने खंखारकर गला साफ करते हुए आंगन में कदम रखा तो मैं धीरे से सिर झुकाए हुए उनके करीब से होकर बाहर निकल गया खलियानों की ओर।

इन लोगों ने आखिर किस दिल के साथ ऐसा किया ? ये लोग तो वे थे जिन्हें कार्तिक का भेंट सारा वर्ष याद रहता था ! मैं सोचता रहा और इस टोह में रहा कि असल तथ्य को जान लूं, परंतु असफल रहा। फिर वह समय-समय की वर्षा भी तो मस्तिष्क की सलेट को धोती रहती है।

इस मध्य में एक बार मियांजी के साथ शहर का चक्कर लगा तो पता चला कि उधर भी और इधर भी दोनों ओर शान्ति समितियां बनाई जा रही हैं। किसी ने कहा, बस अब मामला ठंडा पड़ गया, परंतु आग थी कि अन्दर ही अन्दर सुलगती रही। भादों और आश्विन के महीने इसी तरह बीत गये।

मैंने अब पांचवीं पास कर ली थी और मियांजी ने मुझे शहर के स्कूल में प्रवेश करवा दिया था, बचे-खुचे मित्रों में केमा व फेका थे, जो गांव में ही रह गये थे। शहर में किसी सम्बन्धी के न होने के कारण मुझे बोर्डिंग में प्रवेश लेना पड़ा। बस रविवार के रविवार अवकाश मिलने पर गांव का चक्कर लग जाता।

हमारे स्कूल के समीप पुनर्वासन कार्यालय स्थापित किया गया था जहां सारा दिन मुहाजरों का आना-जाना रहता था। आधी छुट्टी में हम कुछ मित्र मिलकर उस कार्यालय के बाहर खड़े हुए मुहाजरों को समीप से देखते। ये सब उधर से आये थे। गांव जाता तो मियांजी और शहर में मास्टर साहब कहते-कहते अब बड़ी कक्षा है मियां ! कठिन परिश्रम करना होगा, छोड़ो सारे बेकार के बखेड़े हैं, इधर ध्यान दो ! शायद इसीलिए कार्तिक का महीना बीत गया तब याद आया कि गांव में हम सब मित्रों को पूरे वर्ष किसी के आने का इन्तज़ार रहा करता था। सोचा अब क्या लाभ, कोई आए या न आए। मित्र तो सारे निमट गये।

एक शनिवार को गांव जाना हुआ तो केमे और फेके ने बताया कि वह जो आने वाला था, इस बार नहीं आया।

"क्या वास्तव में, कार्तिक का महीना तो बीत गया।" मैंने चकित होकर पूछा।

"हां बीत गया, स्थिति भी तो कुछ ठीक नहीं है।" फेके ने उत्तर दिया।

शाम को हुजरे में बैठे तो किसी ने कहा, "अरे भई, कोई मालूम तो करो, कार्तिक बीत गया और हमने भेंट, उपकार जो कुछ भी है लौटाना तो है ही ! अब के वह आया नहीं कि हिसाब चुकता करते।"

"कलामे-पाक का उधार तो सोने की मुहर है, पर वह लेने आए भी !" दूसरा बोला।

"परंतु कार्तिक तो गुज़र गया, अब क्या करें, किसे लौटायें पाक कलाम का उधार ?"

मियांजी बोले, "अभी पिछले वर्ष ही कहा था उस कम्बख़्त को कि पाक कलाम उठाए फिरता है, एक कलमा (वचन) ही पढ़ना है ना, पढ़ क्यों नहीं लेता ! उत्तर में हंसकर कहने लगा, मियांजी, पढ़ता तो हूं।"

"वह हममें से था या उनमें से ?" किसी ने पूछा।

यह सुनकर सबको चुप-सी लग गई, फिर वे सब देर तक तम्बाकू पीते और

आपस में उलझते रहे।

अब मैं जब कभी शनिवार की शाम को गांव जाता तो यही सुनता कि अब क्या करें ? गत कार्तिक के ऋणग्रस्त अधिक कठिनाई में थे, सब हाथ मल-मल कर कहते, कहां ढूंढें उसे ? कितने समय से आया करता था, प्रति वर्ष देर या सवेर सदैव कार्तिक में पहुंच जाता था।

"हमने कभी ठौर-ठिकाना ही नहीं पूछा उससे।"

"क्यों न शहर से पता किया जाय उसका ?" किसी ने परामर्श दिया।

"हां यह हुई न बुद्धिमानी की बात, बिलकुल पता करो।"

"लेकिन किस शहर से पता करें।"

"ना जाने आता कहां से था।"

"अरे भई पहले अपने शहर से तो पता कर लें !"

"हां यह ठीक है" मियांजी इस बात से सहमत हुए और नम्बरदार ने अगले दिन मेरे साथ दो जवान कर दिए कि शहर में घूम-फिरकर पता करूं कि कार्तिक का उधार भेंट करने वाला कौन था जो सायकिल पर अपना भारी गट्ठर उठाए उन इलाकों की ओर निकला करता था।

अगले दिन सुबह-सुबह हम तीनों शहर जाने के लिए गांव से निकले तो सबने आग्रह किया कि पूरा प्रयत्न करना। बड़े शहरों के चक्कर कौन लगाता फिरेगा, फिर जितने बड़े शहर होंगे उतनी बड़ी समस्या, कहां ढूंढें भई ? मामला करीब ही निबट जाए तो अच्छा हो।

हम तांगे पर बैठने लगे तो मियांजी ने आदेश दिया, "बेटा अच्छी तरह ध्यान से !"

शहर में दो ही बड़े पुस्तक विक्रेता थे। एक से मालूम हुआ कि वह धार्मिक किताबें रखते ही नहीं, केवल पाठ्य पुस्तक बेचा करते हैं। दूसरे ने बताया कि वह लोग फेरी वालों को माल देते ही नहीं। इसलिए सीधे छापे वालों से पता करें। छापे वाले बड़े शहरों में थे फिर जितने बड़े शहर, उतनी बड़ी समस्या। कहां ढूंढें भई, अजब कठिनाई थी। रात गये वह दोनों जवान शहर से असफल पलट गये और मैं बोर्डिंग हाउस चला आया।

सप्ताह भर बाद गांव गया तो पता चला कि दूर व करीब के दूसरे गांव वाले भी उसकी तलाश में विक्षिप्त हैं।

"अब करें क्या ?" रात को हुजरे में सबने सिर जोड़े और देर तक परामर्श होते रहे। मैं भी एक तरफ कोने में बैठा सारी बातें सुनता रहा पर अब जाने क्यों मुझे उनको इस तरह परेशान देखकर एक अद्भुत-सी प्रसन्नता प्रतीत होने लगती थी और गांव वालों की एक ही समस्या थी कि किसी तरह ढूंढो उसे। यद्यपि एक बात का सबको संतोष था कि गीता और गुरुग्रंथ की दक्षिणा हमारे ज़िम्मे नहीं ! जिनके जिम्मे थी वह तो निमट गये।

शहर में अब मेरा अधिक समय बोर्डिंग हाउस के मित्रों के संग बीतने लगा।

स्कूल से छुट्टी मिलती तो खाना खाकर होमवर्क करने और सांध्य में शहर के अन्दर की ओर इकट्ठे घूमने निकल जाते।

उन दिनों मुहाजरीन के आने और सम्पत्ति के झूठे-सच्चे क्लेमों की बातें हुई। पुनर्वासन कार्यालय के कर्मचारियों की धांधली और मनमानी की बातें हुआ करती थीं, चूंकि पुनर्वासन वाले हमारे स्कूल के सामने ही थे इसलिए हमारे स्कूल के मास्टर भी आपस में सारा दिन इसी समस्या पर विवाद करते।

उधर गांव वाले उपहार व दक्षिणा के बोझ तले दोहरे हो चले थे कि अचानक एक दिन यह मामला भी निबट गया।

हम कुछ मित्र आधी छुट्टी में स्कूल के गेट पर खोंचा फरोशों के गिर्द घेरा डाले खड़े थे कि लोगों की एक भीड़ पुनर्वासन कार्यालय से निकली। आगे-आगे पुलिस के सिपाही और पुनर्वासन के उच्च अधिकारी थे।

लोगों की बातें सुनीं तो पता चला कि शहर के अन्दर किसी व्यक्ति की प्रार्थना पर प्रबंधक ने कार्रवाई की है। कार्यालय के अन्दर क्या कार्रवाई हुई, उसका हमें कुछ पता न था परंतु अब जो कुछ होने वाला था वह जानने के लिए हम सब लड़के उस भीड़ के साथ-साथ चल पड़े। भीड़ की दिशा शहर के अन्दर की ओर थी।

लोगों के साथ चलते और बातें सुनते हुए केवल यही मालूम हुआ कि शहर के एक स्थानीय व्यक्ति ने पुनर्वासन वालों के साथ मिलीभगत करके एक ऐसा मकान अलॉट करवा लिया, जिसका मालिक अपना घर छोड़कर नहीं गया था।

"घर छोड़कर नहीं गया तो इस समय कहां गया है ?"

"मैंने स्वयं उसे देखा है जी, वह नहीं जाना चाहता था और नहीं गया।"

"घर छोड़कर कैसे नहीं गया ?"

"बच कैसे गया ?"

"अल्लाह जाने साहब।"

पुनर्वासन वालों का कहना था कि खाली मकानों को स्वयं अपनी देखरेख में ताले लगवाये हैं, तालों को कपड़े में सीकर मुहर लगाई है अपनी, पर अब तो भीड़ चल पड़ी थी और उसकी दिशा शहर के अन्दर थी। हम सब भी चलते गये-चलते गये, फिर सब लोग शहर के अन्दर के एक मकान के सामने जा रुके। घर के प्रमुख द्वार पर कपड़े में लिपटा हुआ सीलबन्द ताला झूल रहा था।

"देखें साहब—बराबर सीलबन्द ताला लगा है।" मकान के नये अलॉटी ने दरवाज़े की ओर अंगुली से इशारा किया।

"जी बिल्कुल—किसी को शक है तो देखकर संतोष कर सकता है !" पुनर्वासन के उच्च अधिकारी ने भीड़ की ओर देखकर कहा।

"फिर—?"

"फिर वापस चलो, बेकार हमारा समय बर्बाद किया, हम कितने केस निबटा लेते इतने समय में।" उच्च अधिकारी ने पुलिस कर्मचारियों का समर्थन चाहा।

"नहीं साहब, ताला खुलेगा और उसे खोलने में कोई बाधा नहीं, लोग देखना चाहते हैं।" पुलिस के कर्मचारियों ने ताले को छूकर देखते हुए कहा।

"खुलवा लीजिए साहब" उच्च अधिकारी ने कहा, "खोल दो भाई ! खोल दो।"

सील तोड़वाकर ताला खुलवा दिया गया और सब लोग आंगन में प्रवेश हो गये, आंगन में कुछ भी न था, पूर्णतः वीरानी, जीवन के लक्षण पूर्णतः विलुप्त थे। सामने के दो बड़े कमरों में सामान तो उपस्थित था परंतु किसी अस्तित्व की उपस्थिति अपना पता नहीं देती थी। रसोईघर में भी आग जले एक अवधि बीत गई थी। धूल ने हर चीज़ को ढांप रखा था।

"देख लीजिए, सब आपके सामने है, यहां कौन हो सकता है ?" पुनर्वासन कार्यालय का उच्च अधिकारी कहने लगा।

"वास्तव में साहब" पुलिस कर्मचारी ने उसका समर्थन किया।

"वापस चलें जी" मकान का नया अलॉटी बोला।

"दरख्वास्तें भिजवाना सरल कार्य है और सबूत प्रस्तुत करना कठिन है !" पुनर्वासन के उच्च अधिकारी ने सारी भीड़ को जैसे पराजित कर दिया।

"वास्तव में साहब आप सच्चे हैं परंतु हमें ऊपर से आदेश मिला था !" पुलिस आफिसर ने जैसे क्षमायाचना चाही।

"ठीक है, ठीक है" उच्च अधिकारी की अकड़ी हुई गर्दन दो-एक बार ऊपर-नीचे हुई। सामने के सिरकर्दा लोग उन्हीं पैरों पर पलटने लगे।

"परंतु यह कोठरी ?" किसी ने इशारा किया।

"यह स्टोर है भई—देख नहीं रहे।" नये अलॉटी ने डांटकर कहा।

"हां-हां साहब ठीक कहते हैं।" पुलिस के आदमी ने तन्नकर कहा।

"चलो भई रास्ता दो—" उच्च अधिकारी बीच में से मार्ग बनाने के लिए मुड़ा। पुलिस कर्मचारी उसके पीछे हो लिए।

भीड़ में से आवाज़ आई, "वह कोठरी जरूर खुलेगी !"

"हां-हां वह कोठरी भी खोलो !"

"अरे क्या है इस कोठरी में, हम दफ्तर वाले बेकार बदनाम हैं।" उच्च अधिकारी ने बाहर निकलने के लिए अपने सामने खड़े हुए एक सहपाठी लड़के को धक्का दिया।

"हटो, रास्ता दो।"

"नहीं—वह कोठरी खुलेगी" स्कूली बच्चों के साथ कुछ जवान सामने आ गये।

"कोठरी क्यों नहीं खोलते ?" कोई पुकारा।

एक व्यक्ति ने कोठरी के बन्द दरवाजे को हाथ से छूकर देखा।

"कोठरी का दरवाज़ा अन्दर से बन्द है।" वह पुकारा।

भीड़ में से एक युवक ने चीखकर कहा—"नामरदो, स्वयं क्यों नहीं खोल लेते आगे बढ़कर कोठरी का दरवाज़ा—"

"हां-हां स्वयं खोलेंगे।" अब सारी भीड़ जैसे दरवाजे पर टूट पड़ी।

जब दरवाजा खुला तो हमने देखा कि कोठरी के अन्दर एक तख़्तपोश बिछा है और सफेद बुर्राक़ की चादर पर गावतकिए का सहारा लिए हुए एक हड्डी का ढांचा आलती-पालती मारे हुए पूरी आंखें खोलकर हमारी ओर देख रहा है।

भीड़ का तो जैसे सांस रुक गया, सब क्षुद्र अपने-अपने स्थान पर चकित खड़े उस कई माह के भूखे-प्यासे अस्तित्व को देख रहे थे।

किसी ने कहा—"जिन्दा है।"

"हां-हां देख तो इसी ओर रहा है।"

"पर उठता क्यों नहीं, कुछ बोलता क्यों नहीं।"

"शायद डर गया है, बेचारा, इतने सारे लोगों को इकट्ठा देखकर—" सब आपस में गुप्तवार्ता करने लगे।

फिर पुलिस के एक सिपाही ने कोठरी के अन्दर जाकर उसके कंधे पर हाथ रखा तो उसकी गर्दन धीरे-धीरे एक ओर ढलक गई।

"नहीं, मर गया।"

"क्या वास्तव में मर गया।"

सबने अन्दर जाकर देखा कि उस तख़्तपोश पर उस हड्डियों के ढांचे के आस-पास सफेद बुर्राक़ चादर पर सुनहरी ज़िल्दों वाले कुरान मजीद, गीता और ग्रंथ साहब की भारी जिल्दें सजी थीं और सामने वाली लाइन में भगत कबीर, मीरा बाई और वारिस शाह जैसे ढाल बने खड़े थे।

"कहां गए कातक का उधार लेने वाले ? कोई सामने आओ ना ?"

मैंने लोगों के ख़र्टे मारते हुए समुंदर पर निगाह की।

"कोई आओ न। आते क्यों नहीं ?"

उसके एक ओर ढलके हुए सफ़ेद लच्छेदार बाल चौड़े माथे पर झूल रहे थे और उसकी खुली आंखें देखकर यों महसूस होता था जैसे अभी अपना झुका हुआ सिर उठाएगा और हाथ जोड़कर कहेगा—ओम नमः शिवाय—ओम नमः शिवाय।

हम बड़ी देर रुके रहे, उसके इर्द-गिर्द, घेरा तंग किए हुए। फिर किसी ने डांटकर कहा—चलो बच्चा लोग चलो तुम्हारा खेल खत्म हुआ।

काली ज़बान

मैंने एक व्यक्ति को देखा, जिसकी कमर संयोग से मेरे सामने नंगी हुई और उसकी कमर पर ऐसे चिह्न थे जैसे घोड़े के जोड़ों के पीछे रह जाते हैं।

जब इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि मैं अपने सगे चाचा की बेटी पर मोहित था, लेकिन जब मैंने निकाह का पैग़ाम भेजा तो मेरे चाचा ने एक शर्त रखी। और वह शर्त यह थी कि मैं बनी-बकर की सबसे तेज़-रफ़्तार की स्याह घोड़ी 'शबका' को मेहर में दूं।

मैंने खुशी से इस शर्त को मंजूर कर लिया और इस चिंता में घर से निकला कि जिस तरह भी हो 'शबका' को उसके मालिक के घर से निकाल लाऊं। सो, मैंने लंबी यात्रा की और बनी-बकर आबादी तक पहुंचा।

उस समय इशा (रात की नमाज़) की अज़ानें हो रही थीं और मेरा सौभाग्य कि आबादी के मैन गेट पर यात्रियों को अपने यहां मेहमान रखने को केवल एक व्यक्ति रह गया था, और वह शख़्स वही था, जिसके घर को मैं सेंध लगाने निकला था। मैंने संन्यासियों का लिबास पहन रखा था और किसी को सन्देह भी न हो सकता था कि उस आबादी तक मैं किस नीयत से आया हूं।

वह अबी ताहिर था, जो मुझसे बहुत निष्कपटता के साथ पेश आया। मेरा सफ़री थैला उसने अपने कन्धे पर डाल लिया और खुशी से झूमता हुआ, मेरे आगे-आगे चला। रास्ते में उसी से मालूम हुआ कि घर में कुल तीन आदमी हैं। एक वह खुद, एक उसकी पत्नी और एक दास।

वह मुझे खुशी-खुशी अपने घर की ओर लिए जाता था और मैं इस सोच में डूबा हुआ कि किस ढंग से उसकी स्याह घोड़ी पर क़ब्ज़ा करूं। उसके घर पहुंचा तो देखा कि दो कमरे हैं। एक में पति-पत्नी रात को पड़ रहते थे और दूसरे में उनका हब्शी दास। लेकिन सबसे बढ़कर वह कि घर के आंगन में, छप्पर के नीचे, मैंने पहली बार शबका को खड़े देखा। चांद की मद्धिम रोशनी में उसका स्याह चमकता

रंग लश-लश कर रहा था। उसके क़रीब ही एक स्याह रंग की बछेरी बंधी थी और चंद बकरियां।

अबी ताहिर की बीवी ने ख़ुशी-ख़ुशी मेरा स्वागत किया फिर उस भली औरत ने अपने हाथों से मेरे लिए बिस्तर दुरुस्त किया और गर्म पानी से मुंह-हाथ धुलवाकर मेरे सामने खाना परोस दिया। उस समय मुझे सख़्त भूख लगी हुई थी। मैंने जी भरकर खाया था।

खाना खाने के बाद अबी ताहिर के साथ क़हवा पीते हुए मैं जल्दी में था और मेरा मेज़बान (आतिथेय) मेरी यात्रा का विवरण सुनने का इच्छुक। लेकिन मुझे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समय दरकार था। इसलिए मैंने नींद का बहाना किया और आंखें मूंदकर लेट गया। अबी ताहिर ने मेरे आराम का ख़्याल करते हुए अनमने ढंग से शुभ-रात्रि कहा और कमरे से बाहर निकल गया।

उसके कमरे से निकलते ही मैंने फूंक मारकर दीपक बुझा दिया और दरवाज़े की ओट में हो गया। चांद की मद्धिम रोशनी में मैंने देखा कि पति-पत्नी ने आंगन में बैठकर बचे-बचाए खाने के तीन हिस्से लगाए। एक हिस्सा दास के हवाले किया और शेष खाना खाकर बराबर वाले कमरे में आराम करने के लिए चले गए।

दास दिन भर का थका-मांदा था, आंगन में छप्पर के नीचे पड़कर सो रहा। मैंने अवसर को उचित समझा। दो एक कंकरियां दास की ओर उछालीं ताकि पता चल जाए कि सोता है या जाग रहा है पर वह बेख़बर पड़ा सो रहा था।

अब मैंने अपने यात्रा के थैले में से घोड़े की अयाल से बनी हुई लगाम निकाली और आंगन में आ गया। घोड़ी को आराम से थपकी देते हुए लगाम पहनाई और चोर-क़दमों के साथ उसे घर से बाहर निकाल लाया।

उस समय आकाश पर छिदरे बादलों की आवारा टुकड़ियां अठखेलियां कर रही थीं और पूरा चांद रोशन था।

फिर मैंने देर नहीं की, शबका पर बैठा और हवा हो गया।

मैंने जब एड़ लगाई है तो पीछे से एक स्त्रैण चीख़ सुनाई दी और उसके बाद पूरी आबादी का शोर। शायद मेरे मेज़बान की बीवी जाग रही थी और उसने मुझे निकलते हुए देख लिया था।

उस समय मेरा पीछा करने के लिए एक भीड़ निकली पर मैं तो उसी समय शबका की पीठ पर सवार था और वह हवा से बातें कर रही थी। ऐसे में कौन माई का लाल मुझे रोक सकता था।

सुबह के चिह्न जागने तक मेरे पीछे आने वाले अधिकांश सवार हांफकर रह गए, उनमें से केवल एक था जो निरंतर मेरा पीछा कर रहा था और वह रह-रहकर मुझे ललकारता था। मैं बहुत हैरान कि ऐसा जीदार और बर्क़-रफ़्तार (विद्युत की-सी गति) आख़िर कौन है। यहां तक कि उसने मेरे क़रीब पहुंचकर भाले का पहला वार

मेरी कमर पर किया। उसके बाद न तो वह मुझसे इतना क़रीब हो पाया कि उसके भाले का एक ही भरपूर वार मेरा काम तमाम कर देता और न मेरी घोड़ी उससे इतनी आगे निकल सकी कि उसका भाला मुझे छू न सकता, ऐसे में वह मुझ पर लगातार वार करता चला गया। मेरी कमर पर यह चिह्न उन्हीं कचोकों के हैं।

दो पहर रात उससे बचकर निकलने के यत्न में बीत गई। उस समय तक हम दोनों एक गहरी खड्ड के किनारे जा पहुंचे।

मैंने हिम्मत करके शबका को एड़ लगाई तो बड़ी छलांग लगाते हुए पलक झपकने में मुझे पार उतार ले गई जबकि मेरे पीछे आने वाला सवार, वहीं ठहर गया था।

जब मेरी सुध-बुध लौटी तो मैंने दूसरे किनारे की ओर मुड़कर देखा। गहरी खड्ड के उस ओर मेरा आतिथेय, अबी ताहिर खड़ा था। मैं बहुत लज्जित हुआ और मैंने अपनी चादर से चेहरे को ढांप लेना चाहा तो उसने ऊंची आवाज़ में मेरा नाम लेकर कहा : "अबू नवास, यह यत्न न कर। मैंने तुझे पहचान लिया। मैं उस घोड़ी का असल मालिक हूं जो इस समय तेरे नीचे है और यह उसी घोड़ी की कोख से पैदा हुई है, जिस पर मैं इस समय सवार हूं। याद रख, मैं तुझे भागकर जाने नहीं दूंगा। इसके बावजूद कि मैंने शबका की पीठ पर जिस किसी को पकड़ना चाहा उससे जा मिला और जिस किसी ने भी मेरा पीछा किया, मैं उसके हाथ नहीं आया पर आज, ख़ुदा की क़सम, तू मुझसे बच कर नहीं जा सकता। देख, मेरी चीज़ मुझे लौटा दे।"

उस समय तक सूरज पूरी तरह निकल आया था। हम दोनों के बीच वह गहरी खड्ड बीच में आने वाली बाधा थी और वह स्याह बछेरी पर सवार, हाथ में भाला थामे मेरे जवाब का प्रतीक्षक था।

दो पहर रात की उस दौड़ के बाद मैंने उस बछेरी के लंबे सांस का अनुमान लगा लिया था और अबी ताहिर के दम-खम का भी। बेशक वह सच्चा था और इस बात का मुझे विश्वास हो चला था कि उसने मुझे अपनी नज़रों से ओझल नहीं होने देना।

मैंने परिस्थिति का जायज़ा लेते हुए बहुत विचार किया और एक नया जाल बुना। मैंने उसे संबोधित करके कहा : "अबी ताहिर तू मेरा उपकारी है पर विश्वास कर कि तू इस घोड़ी के क़ाबिल नहीं।" उसने पूछा : "कैसे ?"

मैंने कहा : "घोड़ी और औरत उसकी, जिसके नीचे। रहने दे। कहने योग्य नहीं है।"

उसने बहुत आग्रह किया तो मैंने कहा : "रात को बराबर वाले कमरे में तेरी बीवी तेरे पास थी लेकिन मैं तो जाग रहा था। मैंने अपनी आंखों से देखा कि तेरे दास ने एक कंकर उछाला, और जब तू गहरी नींद सो गया तो तेरी बीवी तुझे वहीं

सोता छोड़कर, छप्पर तले उस हब्शी के पहलू में आ गई। तू सो रहा था और वह दोनों 'ग़ैर हालत' में थे तब मैंने तेरे घर के आंगन से इस घोड़ी को खोला।"

मेरी यह बात सुनकर अबी ताहिर को चुप लग गई। उसने गर्दन झुका ली और भाला ज़मीन पर टेक दिया। देर तक चुप रहा, फिर कुछ सोचकर कहने लगा : "भाग्यहीन, तूने मेरा सारा दम-ख़म तोड़कर रख दिया। ख़ुदा की क़सम, आज तू बचकर न जाता पर जो बात मैंने तेरी ज़बान से सुनी, उससे मैं ढह गया। आज से तू मेरी घोड़ी पर क़ाबिज़ हुआ, मुझसे मेरी बीवी को तलाक़ दिलवाई और दास की हत्या करवाई।"

यह कहकर अबी ताहिर ने भाला संभाला और अपनी बछेरी की बागें मोड़ लीं।

कथावाचक का बयान है कि अबी ताहिर ने अबू नवास की जांबख़्शी के बाद वही कुछ किया, जिसका उसने अबू नवास को वचन दिया था और अबू नवास ने वही किया जो कुछ कि करना चाहता था। उसने शबका को मेहर में देकर अपनी पसन्द की लड़की से विवाह रचाया। लेकिन अबू नवास, जो कुछ वह कभी था, वैसा न रहा। उसके सारे किए-धरे पर उस समय पानी फिर गया, जब शादी के तीसरे दिन उसकी प्रिय पत्नी ख़ून थूकती हुई दम दे गई। और यूं अबू नवास ने इस नीले आकाश तले हमेशा भय महसूस किया।

एक अनजाना भय, जिसने उसे मारकर रख दिया। उसने रक्षा की ख़ातिर अपने इर्द-गिर्द पत्थर की परिधि खड़ी की और दरवाज़ों पर सशस्त्र चौकीदार बैठा दिए लेकिन देखते ही देखते, जैसे कुछ था, जिसने उसे अन्दर ही अन्दर घुन की तरह चाट लिया।

उस रात भी आकाश पर छिदरे बादलों की आवारा टोलियां अठखेलियां कर रही थीं और पूरा चांद रोशन था, जब अबू नवास का सीना धीरे-धीरे बेस्वर होता गया।

उसके पत्थर की परिधि के रोशनदान में से झांकता हुआ कुछ रोशन आकाश था और नीचे करवटें लेता हुआ सुरमई अन्धेरा। अबू नवास हर तरह सुरक्षित था पर एक फांस थी जो अन्दर ही अन्दर से उठकर उसके नासाछिद्र तक चली आई थी और उसके लिए सांस लेना कठिन हो गया था।

इससे पहले भी प्रायः ऐसा हुआ है, कि जब हर ओर चुप की चादर तन जाती और वह बिस्तर पर अकेला होता तो यह सांस की फांस उभर आती लेकिन आज उसकी मुश्किल ज़्यादा थी। वह उठकर खुले में निकल जाना चाहता था लेकिन उस समय उसके लिए ऐसा कुछ संभव न था। उसके इर्द-गिर्द खिंची हुई पथरीली परिधि के दरवाज़े अन्दर से ताला लगे हुए थे और बाहर चौकस चौकीदार और उसे मुश्किल का सामना करना था।

उसके सीने की फांस थी या एक दहकती हुई चिंगारी, जो उसके नासाछिद्र

तक ऊपर उठ आई थी और अबू नवास को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्या न करे।

वह अभागा आज फिर क्यों याद आ गया, अबू नवास ने सोचा और सिर को झटक दिया। फिर हमेशा की तरह इस बार भी उसने अपने आस-पास के वातावरण से अलग हो जाने का प्रयास किया पर असफल रहा।

ऐसे में अबी ताहिर, आगे और आगे बढ़ता ही चला आता था और चौकियों पर चौकस पहरेवालों को उसकी ख़बर न थी।

"ओ—कोई है ? रोको उसे—"

अबू नवास ने अपने सीने में जमा सारी चिंघाड़ती हुई भावनाओं को आवाज़ दी लेकिन वह किसी को अपनी सहायता के लिए बुलाने में असमर्थ रहा।

उस दिन अबी ताहिर को कौन रोक सकता था।

अबी ताहिर आया और उसकी पाँएती की ओर खड़े होकर उससे संबोधित हुआ : "मेरी ओर देखो अबू नवास—यह मैं हूं। स्याह ज़बान। मेरे श्राप से बचना तुम्हारे लिए संभव न था।"

फिर उसने उसी तरह खड़े होकर, अपनी काली ज़बान को दोनों होंठों पर फेरा और बोला, "अबू नवास, मुझसे बचकर कहां जाओगे। तुमने मेरी स्याह घोड़ी पर कब्ज़ा किया, मेरी प्रतिज्ञा-पालन करने वाली पत्नी को तलाक़ दिलवाई और मेरे प्राण-न्यौछावर करने वाले हब्शी दास की तुम्हीं ने हत्या कराई है।"

उसने यह कहा और वहां कुछ देर रुककर पीतल जड़े महाकाय बंद दरवाज़ों की दर्ज़ों में से रास्ता बनाता हुआ पलट गया।

सुबह हुई तो अबू नवास के रक्षकों को देर तक परेशानी का सामना करना पड़ा। दो पहर दिन तक वहां की सारी आबादी एकत्रित हो चली थी। फिर रात गए तक वह सब पीतल जड़े महाकाय दरवाज़ों को काटने में व्यस्त रहे लेकिन जब अबू नवास तक पहुंचने में सफल हुए तो उन्होंने देखा कि अबू नवास की पीठ नंगी थी और उसकी देह कमान की तरह, बिजली मारे लोहे की तरह भुरभुरी हो चली थी।

कथावाचक ने बयान खतम करने के बाद दोनों होंठों पर अपनी ज़बान को फेरा, ज़रा संकोच किया, फिर बोला : "अबी ताहिर के सूखे गले को तर करने की ख़ातिर पानी नहीं लाओगे क्या ?"

कुंड का मेहराबसाज़

मेरे लिए उस सुर्ख़ टोपी वाले मेहराबसाज़ (डाटकार) मिस्त्री को भूल जाना मुमकिन न था, लेकिन इस दुनिया के सौ धंधे हैं और जीते जी के हज़ार बखेड़े ! उसकी याद धीरे-धीरे धुंधलाती चली गई, यहां तक कि मैं उसका नाम तक भूल गया।

इस ब्रांच लाइन पर विभिन्न हैसियतों में सफ़र करते हुए तीस वर्ष बीत गए। टिकटों की पड़ताल के दौरान हज़ारों दुराचारी, कुमार्गी यात्रियों से भेंट हुई, सैकड़ों अनहोनी घटनाओं का गवाह ठहरा। अल्लाह वाले भी बहुत से मिले। नहीं समझ पाया इस दुनिया के झमेले को।

अगले वर्ष, इन्हीं दिनों में यह नीली वर्दी उतर जाएगी, बैठ जाऊंगा घर का होकर। टिकट काटने वाला कटर कहीं रखकर भूल जाऊंगा और संभाल लूंगा आराम कुर्सी। समय की धूल झाड़कर एक चेहरा लाऊंगा सामने। तब बातें होंगी विस्तार के साथ।

ट्रेन अपनी विशेष गति के साथ हिचकोले खाती हुई, धुएं के छल्ले उड़ाती हुई चली जाती थी।

जाने कैसे, आज वर्षों बाद, वह सुर्ख़ टोपी वाला मेहराबसाज़ मिस्त्री फिर याद आ गया। शायद इसलिए कि वह भी दिसम्बर की एक ऐसी ही ठंडी रात थी जब नियमतः टिकट पड़ताल के बाद मैं एक ख़ाली बर्थ देखकर तंबाकू पीने की ख़ातिर बैठ गया और उससे बात चल निकली थी।

उसकी तातारियों जैसी खड़ी नाक, करंजी आंखें, चौड़े कंधे मुझे अब तक याद हैं। उसने सख़्त सर्दी में केवल एक सूती कुरता-पायजामा पहन रखा था।

मैंने उससे पूछा था, "तुम्हें सर्दी नहीं लगती क्या ?" वह मेरा सवाल सुनकर मुस्करा दिया था और अपने क़दमों में रखे हुए थैले की ओर इशारा करते हुए उसने कहा था : "साहब ! इस थैले में करंडी, तेशा और गरमाला, एक मिस्त्री का सामान

रखा है। यही तो दिन हैं काम करने और शरीर के जोड़ों को खोलने के।"

मैं उसके नाम से परिचित न था। जब उससे काम के प्रकार और दक्षता की बात चली तो बराबर में बैठा हुआ एक अनजान यात्री बहुत हैरान हुआ, बोला, "बाबूजी, आप नहीं जानते इन्हें—कुंड के माथे का झूमर हैं यह। इनकी बारीक करंडी और तैशे का नाम दूर-दूर तक मशहूर है। आप इन्हें नहीं जानते ?" सुर्ख टोपी वाले मिस्त्री ने यह बात सुनकर विनम्रता से अपना सिर झुका लिया।

"क्या वाकई, मिस्त्री ?" मैंने पूछा।

"साहब ! क्या अर्ज़ करूं। मैं क्या और मेरी औकात क्या, यह तो ऊपर वाले का खास करम (कृपा) है और इस फ़कीर की सेज़ी का सबब। जैसे-तैसे मरमर काट लेता हूं तैशे के साथ और टाइलें थोप लेता हूं। अल्लाह कारसाज़ (काम बनाने वाला) है। लोग झूठ-मूठ में तारीफ़ कर देते हैं साहब।"

फिर जब बातों-बातों में उसकी वास्तु-कला की योजनाओं और उपलब्धियों का विवरण मालूम हुआ तो मेरे लिए उसे जल्द भूल जाना मुमकिन न रहा। बिना किसी लालच और लोभ के वह पिछली तीन पीढ़ियों से मस्जिद की मेहराबें, संगी जाए-नमाज़ की कतारें और मिंबर ही बनाता चला आया था।

वह बहुत नाप-तोलकर बात करता, यूं जैसे मस्जिद की मेहराब में टाइलों के जोड़ मिला रहा हो या संगमरमर को गोदकर बनाए हुए खांचों में रंगदार मसाला भर रहा हो।

उसे कुंड जाना था लेकिन उस समय रेल की पटरी कुंड से चार कोस परे एक लंबा धनुष बनाकर निकल जाती थी। उस मोड़ पर जब ट्रेन ज़रा धीमी होती तो प्रायः यात्री निर्जन-स्थान पर उतर जाते।

घंटा भर साथ रहा होगा उसका, जब ट्रेन ज़रा धीमी हुई तो वह भी उस मोड़ के अंत पर चलती ट्रेन से उतर गया।

निस्सन्देह, वह एक असाधारण यात्री था। उन गिने-चुने यात्रियों में बहुत स्पष्ट, जो बहुत विचित्र और अलग मालूम हुए और जिनसे पिछले तीस वर्षों के बीच इस ब्रांच लाइन पर भेंट हुई। लेकिन इस पहली और अंतिम भेंट के कुछ दिन बाद कुंड से संबंधित एक छोटी-सी खबर ने मुझे विचित्र असमंजस में डाल दिया।

खबर क्या थी, अखबार बेचने का एक बहाना था। अखबार और प्रशासन की मिलीभगत। उस समय मैं ठीक से समझ नहीं पाया। अखबार में एक छोटा-सा चौखटा बनाकर जहां कुंड के दिन-रात बयान किए गए थे, वहीं एक विवाहित औरत की हत्या की खबर भी दर्ज की गई थी।

मेरे लिए इस खबर का महत्वपूर्ण पहलू यह था कि विशेष संवाददाता ने कुंड के प्रसिद्ध मेहराबसाज़ को बदचलनी के सन्देह में कथित रूप से अपनी पत्नी का हत्यारा ठहराया था।

जो हुआ सो हुआ, पर क्या प्रसिद्ध मेहराबसाज़ मिस्त्री वही सुर्ख़ टोपी वाला नौजवान था ? क्या वह हत्यारा भी हो सकता है ? मैं बराबर सोचता रहा। अपनी सरकारी ड्यूटी के कारण कुंड जाकर सच्चाई का पता लगाना मेरे लिए कठिन था, केवल यार-दोस्तों से बात चलती रही। दोस्तों ने एक अंधी हत्या ही ठहराई या प्रशासन की मिलीभगत। मेरी उलझन अपनी जगह बनी रही।

यात्रियों के हाथों में थामे हुए अख़बार मेरी नज़रों से गुज़रते रहे पर अदालती तफ़्तीश की रिपोर्टिंग हमें देखने को नहीं मिली।

लोग कहते हैं कि मिस्त्री ने अदालत में एक ही निवेदन किया : "केवल थोड़ा-सा काम रह गया है साहब—यह काम अधूरा छोड़ दिया तो उधर क्या मुंह दिखाऊंगा साहब—"

लेकिन ऐसी बातें अदालती कार्रवाइयों को प्रभावित थोड़ा कर सकती हैं।

फिर मालूम हुआ कि मिस्त्री फांसी चढ़ गया।

बूढ़ा आदमी भी किस काम का, लगातार थका देने वाले सफ़र में ऊंघ के कारण, मैं जैसे इर्द-गिर्द की दुनिया से कटकर रह गया था, जब आंख खुली तो मेरे सामने और बराबर के अधिकांश यात्री बदल चुके थे। सोचा अगले स्टेशन से टिकटों की पड़ताल शुरू करूंगा और इत्मीनान के साथ संभलकर बैठ गया।

"बाबूजी इस ब्रांच लाइन पर सफ़र करते हुए तीन बरस बीत गए—लेकिन मजाल है कभी आंख लगी हो। आप पर ख़ुदा की ख़ास मेहरबानी है साहब, यह नेकदिल लोगों की ख़ास पहचान है।"

सुर्ख़ टोपी ओढ़े, खड़ी नाक, करंजी आंखों और चौड़े कंधों वाला मेरा नया हमसफ़र मुझसे संबोधित था और मैं हैरान कि बरसों पहले वह फांसी चढ़ जाने वाला मेहराबसाज़ मिस्त्री दोबारा कैसे जी उठा।

वह कह रहा था : "नित दिन अजनबी भले-मानुस मुसाफ़िरों से मिलता हूं साहब, हमेशा के लिए बिछड़ जाने के लिए। रश्क आता है उन पर। पर मेरा काम ही कुछ इस क़िस्म का है कि हर तरफ़ जाना पड़ता है।"

फिर उसने सदरी की ऊपरी जेब से मुड़ा-तुड़ा सिगरेट निकाला और उसे सुलगाते हुए गहरा कश लिया।

"दिल न भी चाहे तब भी जाना पड़ता है साहब ! अपने पुरखों का कोई वादा निभाने की ख़ातिर। पुराने हिसाब चुकाने होते हैं। पिछली चार पीढ़ियों से हम यही कुछ करते आए हैं। लोग कहीं के कहीं पहुंच गए साहब लेकिन हम वहीं के वहीं हैं। संगमरमर और टाइलों की कटाई और चुनाई पर मुझे कोई घमंड नहीं। यह तो ऊपर वाले की ख़ास अता (दान) है साहब, और इस फ़कीर की रोज़ी का सबब, नहीं तो एक लावारिस (अनाथ) बच्चा किस काम का साहब ! अल्लाह कारसाज़

है। वालिद साहब क़िब्ला ने सिवाय मस्जिद की मेहराबों की तज़ईन (संवारना) के दूसरे काम को कभी हाथ नहीं लगाया। जवानी में गुज़र गए, मुझे तनहा छोड़ गए अपने अधूरे कामों के साथ।''

''क्यों नहीं करते कोई दूसरा काम। दरबदर फिरते हो।'' मैंने कहा।

''बाबूजी, शौक़ीन-मिज़ाज बहुत मजबूर करते हैं कि रिहायशी बंगलों की आराइश करूं। मुंह-मांगी उजरत देते हैं पर मुझसे ऐसा होता नहीं साहब, अल्लाह के घर संवारता हूं इसीलिए अनजान इलाक़ों का होकर रहना पड़ता है। घर-बार छोड़ना पड़ता है। महीनों पलटकर ख़बर नहीं लेता। लोग कहते हैं कि हम ठंडी मिट्टी के बने हैं। क्या करें साहब ! किसका जी नहीं चाहता कि अपने घर में रहे।''

''विवाहित हो ?''

''हां साहब। अभी दो साल पहले शादी हुई है लेकिन क्या करूं साहब, यह काम भी तो करने हैं।''

''बेशक।'' मैं हार गया।

''अब किधर का इरादा है ?'' मैंने फिर पूछा।

''अपने आबाई (पैतृक) इलाके में जा रहा हूं साहब, कुंड का नाम तो सुन रखा होगा आपने, रोज़ गुज़रते हैं इधर से, पर देखा न होगा उतरकर।''

''हां—कुंड क्या इश्रत-कुंड कहो ना, ख़ासा बदनाम इलाक़ा है।''

''कोई बदनाम-सा बदनाम—अमूदी (लंबवत) पथरीली चट्टानों और पथरीली गुलाम-गर्दिशों में आबाद यह हंसता-बसता कस्बा हमेशा से ऐसा नहीं था साहब। तातारी नयन-नक़्श वाले ख़ुशहाल गाड़ीवानों के स्थायी निवास के कारण शताब्दियों से आबाद और नेकनाम। देखते ही देखते उसे जाने किसकी नज़र खा गई। हमारे वीर क़बीले के बख़िए उधड़ गए। हमारे पीतलजड़े हवेलियों के महाकाय दरवाज़ों की चरचराहट दम तोड़ गई। क्या यह तब्दीली केवल भाप के पहिए के इस ओर आगमन से हुई ?''

''मैं क्या कह सकता हूं मियां। बस नाम सुन रखा है तुम्हारे इलाके का।''

''साहब कुछ लिशकते हुए डिब्बों के साथ रेल का सीटियां मारता हुआ इंजन पलक झपकते में गुज़रता है इधर से। लम्हा भर ठहरकर चंद शहरी बाबू उतारता है और इस बस्ती को पहले से ज़्यादा निर्जन कर जाता है। क्या जानिए साहब, बेरोज़गारी और भूख ने यह दिन दिखाए या कोई और कारण है। हमारे नेकनाम क़स्बे को इश्रत (सुख, भोग-विलास) सराय में बदल दिया गया साहब ! जहां रात गुज़ारने के लिए तातारी आंखों और चौड़े कंधों वाली लंबे क़द वाली लड़कियां सौ-पचास रुपये में मिल जाती हैं। इस बस्ती के दिन ऊंघते और रातें जागती हैं। अस्थायी सुखों की तलाश में दूर-दूर से आए हुए राल टपकाते बूढ़े। सत्तावान राष्ट्र-नेता, फ़ौजी जवान, पत्रकार, कवि और लेखक...संक्षेप में हर तरह के लोग इधर

आते हैं। पेशावराना हावभाव और झूठी अदाओं से संतोष पाते हैं।"

"अच्छा—यह लोग भी ?"

"हां साहब, हर तरह के लोग आते हैं इधर—मैं बहुत छोटा-सा था साहब, जब इस बस्ती को छोड़ भागा था, सिर पर कोई था जो नहीं। बहुत काम किया इधर-उधर। अब सोचा है इस पापों के घर में एक मस्जिद संवार दूं। इस सांस का क्या ऐतबार। आई आई न आई न आई। बस यही सोचकर चल पड़ा साहब—"

नौजवान मिस्त्री मस्जिद की मेहराब में टाइलों के जोड़ मिला रहा था, संगमरमर को गोदकर बनाए हुए खांचों में रंगदार मसाला भर रहा था। लंबवत पथरीली चट्टानों और पथरीली गुलाम-गर्दिशों में से गुज़रती ट्रेन के धुंधले शीशों में अब इक्का-दुक्का रोशनी झिलमिलाने लगी थी और ट्रेन की रफ्तार कम हो गई थी।

"मिस्त्री तुम्हारा स्टेशन आने वाला है ?"

"हां साहब—यह मिटी-मिटी रोशनियां इश्रत-कुंड की ही हैं। मैं यहीं उतरूंगा साहब। मेरे लिए दुआ कीजिएगा।"

"अच्छा, एक बात बताओ—क्या तुम्हारे पिताजी भी इसी तरह की सुर्ख़ टोपी पनहते थे ?"

"जी—जी हां साहब—लेकिन लोग कहते हैं वह मेरी तरह ठंडी मिट्टी न थे। बहुत गर्म-मिज़ाज थे। अल्लाह माफ़ करे—बस साहब, अब चलता हूं। उम्र ने वफ़ा की तो फिर कभी—"

"इंशा अल्लाह।"

सुर्ख़ टोपी वाला नौजवान मिस्त्री अपने सामान को समेटते और बात संक्षिप्त करते हुए उठ खड़ा हुआ।

"खुदा हाफ़िज़।"

वह इश्रत-कुंड के कुछ अंधकारमय स्टेशन के अंधकार में उतर गया।

लम्हा भर रुककर ट्रेन एक बार फिर चल पड़ी थी। मैंने खिड़की में से बैठे-बैठे उसकी गतिमान आकृति को आत्यंतिक तेज़ी के साथ रेलवे-फाटक के पार इक्का-दुक्का टिमटिमाती हुई रोशनियों की ओर उतरते हुए देखा।

ऐसे में, मेरे जी में जाने क्या आई कि उसे आवाज़ दूं और चीख़-चीख़कर बताऊं कि मिस्त्री, तेरा बाप गर्म-मिज़ाज हरगिज़ नहीं था। मैंने उसे तेरी उम्र में देखा है। जान लो कि वह किसी गहरे षड्यंत्र का शिकार हुआ—नहीं संवारने देंगे तुम्हें अल्लाह का घर—यह इश्रत-कुंड का प्रशासन, यह राल टपकाते बूढ़े—यह झूठ के पुलन्दे—

लेकिन मैं ऐसा न कर सका। मुझे बहुत आगे जाना था ट्रेन के साथ और ठंड बढ़ती जा रही थी। टिकटों की पड़ताल के बजाय मैंने अपने सफ़री थैले में से ब्रांड कोट निकालकर अपने कंधों पर डाल लिया और बाहर खुलने वाली खिड़की के ठंडे शीशे के साथ सिर टेक दिया।

ट्रेन एक बार फिर अपनी विशेष गति को पाने की कोशिश में थी और इश्रत-कुंड का नौजवान मेहराबसाज़ मिस्त्री पीछे रह गया था।

कुंज-ए-आफियत

(सुख-शान्ति का एकांतवास)

वह अनादिकाल से उदास और अकेला था अपने-आप में गुम, उदासी और अकेलेपन में मगन। उसने दुनिया की तरफ़ से आंखें बंद कर ली थीं।

यह सब एकाएक हुआ था और दोस्त-यार देखते रह गए। सारी महफ़िलें उसी के दम से आबाद थीं, उजड़कर रह गईं।

और उसने दुनिया की तरफ से आंखें बंद कर लीं।

बहुत देखा-भाला, इस पापों की गठरी को--कुछ हासिल नहीं। आंख दिल का दरवाज़ा है, तमाम बुराइयां इसी रास्ते से दिल में दाखिल होती हैं।

वह इसी नतीजे पर पहुंचा और दुनिया से पर्दा कर लिया।

कुछ समय बाद उसकी याद दोस्तों की महफ़िल में उदासी की लहर की तरह दाखिल होती। हंसी-मज़ाक की महफिलें बेरौनक होकर रह जातीं और संतुष्ट और प्रसन्न चेहरे पल भर में मुर्झाए और निढाल दिखाई देने लगते।

लेकिन यह सब बस क्षण भर के लिए ही होता। उसके बाद वही हंगामा और दुनियादारी का फैलाव।

आज वह एक लम्बे समय के बाद घर से निकला था।

घर क्या था, दुनिया और दुनिया वालों से बचाव का साधन था—सुख-शान्ति का एकांतवास।

जहां वह जैसा था, संतुष्ट और प्रसन्न न सही, अपने आप में गुम था।

लेकिन उसकी एक शक्ल थी। कभी यों ही बैठे-बिठाए एक ख़याल उसे आ घेरता और वह उलझता चला जाता।

आज भी ऐसा ही हुआ। एकाएक उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे बाहर के झमेलों और ज़िंदगी के फैलाव में कोई है; एक आत्मा—एकल आत्मा जो जीवन व्यतीत करने का यत्न कर रही है। केवल उसकी खातिर—और उसे पुकारती है।

लेकिन कहां ?

बाहर तो लोगों की भीड़ है। अरुचिकर तत्वों की अधिकता।

मुश्किल यह आन पड़ी थी कि वह ब्रह्मचारी आत्मा उसी कोलाहल में कहीं छुपी थी उन अरुचिकर तत्वों में घिरी।

परामर्श चाहिए।

दोस्तों और दुश्मनों से—दुनियादार बुद्धिमानों से उसने निर्णय कर लिया।

और वह निकल खड़ा हुआ, बाहर के हुजूम से बचता, सहज-सहज कदम धरता।

पतन का समय था और जाने-पहचाने रास्ते पर उसके कदम अनायास उठ रहे थे। जैसे ढलान में पानी भरता है।

उसने रुककर तसल्ली कर ली। दोस्तों की चौकड़ी उसी तरह जमी थी जैसे वह छोड़कर गया था। जाने किस बात पर अभी थोड़ी देर पहले तक सब हंसते-हंसते लेट-लेट गए थे। जब वह वहां पहुंचा तो संतुष्ट और आनंदित चेहरों पर मुर्दनी छा गई थी। उस बसी-बसी महफ़िल में वह उदासीनता की एक लहर की तरह दाखिल हुआ था।

"कहां रहे इतने दिन ?—आज हम पापियों का ख्याल कैसे आ गया ?" एक मुर्झाई और निढाल-सी आवाज़ ने शांति की मुहर तोड़ी।

जवाब में वह खामोश रहा और सबको जैसे चुप-सी लग गई। वह भी खोया-सा उनके बीच बैठा रहा।

वह जितनी देर बैठा रहा एक पापी का एहसास महफ़िल पर छाया रहा।

"माफ़ करना—दोस्तो ! मैं खामख़ाह बाधक हुआ—अच्छा चलता हूं।"

वह उठने ही को था कि उसके बराबर से एक निढाल अस्तित्व ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया—"बैठो—कहां जाओगे ?"

वह हाथ जो पल भर उसके कंधे पर रखा रह गया था कितना बोझिल था। उसने खयाल किया कहां जाऊंगा।

वह कुछ निर्णय न कर पाया और बैठ गया। उसके सामने दुनियादारी के बोझ से निढाल अस्तित्व ज़मीन में धंसते जा रहे थे।

"अब तो कुछ-कुछ नाम भी भूल रहा हूं। लेकिन सबके नहीं। वक्त भी बहुत हो गया यारो।"

लम्बी चुप के बाद उसने क्षमा याचना चाही।

"इसीलिए तो कहते हैं ना कि अपने चाहने वालों की तरफ़ आते-जाते रहना चाहिए नहीं तो रास्ते भी मिट जाते हैं, नाम भी तो रास्ते ही हैं ना ?"

"बेशक। लेकिन यह आंखें, तमाम बुराइयां इसी रास्ते आती हैं।" उसने अपनी धुंधलाई हुई आंखों से सब पर नज़र डाली।

उसके सामने डूबते हुए निढाल अस्तित्व थे। सांसारिक लोभ में हलकान। इंसानी पिंजरा खाली सूने उजाड़ मकानों की तरह—और उसकी नज़रें उनके आर-पार देख रही थीं।

वह बोझिल हाथ जो पल भर को उसके कंधे पर रखा रह गया था, एक बार फिर उठा और उसके कंधे पर ठहर गया।

उस वक़्त शाम धीरे-धीरे उतर रही थी और वह एक मुद्दत बाद अपने चाहने वालों के बीच बैठा था।

उसने एक गहरा सांस लिया और एक मर्मज्ञतापूर्ण अंदाज़ में आगे झुककर कहा—"परामर्श चाहिए।"

"सौभाग्यशाली—हम पापी लोग।" सब एक ज़बान होकर बोले और कान लगाकर सुनने लगे।

"दोस्त ! क्या अर्ज़ करूं। कोने में अकेला बैठने वाला आदमी हूं। बहुत देखा है इस पापों की गठरी को। यह दो छिद्र उसने दिए हैं देखने को। बुराइयों की भीड़ है सो चली आई है इनके रास्ते। बुरा, भला, अरुचिकर तत्व। लेकिन अब एक मुश्किल आन पड़ी है और तुम बुद्धिमानों के पास चला आया हूं।"

"कहो, हम पापी किस योग्य हैं।" सबने एक ज़बान होकर कहा।

"यारो ! मुश्किल यह है—मेरा मतलब, मुझे कभी-कभी यों महसूस होता है कि जैसे कोई एक आत्मा—एकल आत्मा, इसी कोलाहल में छुपी, मुझे आवाज़ देती है—कहती है—तुम आंख वाले हो। मुझे बताओ क्या सचमुच ऐसा है ?"

यह वाक्य सुनकर उस बोझिल हाथ वाले निढाल अस्तित्व ने चाहा कि उनका अनादिकाल से उदास साथी जीवन की ओर लौट आए। यह केवल उसकी शुभकामना थी।

फिर उसने गहरा सांस लिया और खंखारकर गला साफ़ करते हुए बोला—"हां ऐसा है। तुम्हें अपना किस्सा सुनाऊं। यह उन दिनों की बात है जब इन पापियों में तुम्हारा रोज़ का उठना-बैठना था।"

"बहुत पुराना किस्सा ले बैठे—"

"हां, उन्हीं दिनों की बात है। ऐसी ही एक शाम थी और बाहर सुर्ख़ ईंटों के रास्ते पर मैं अपने आप में गुम, मेरे आगे म्युनिसिपल कमेटी की लारी लैम्प पोस्ट रोशन करती चली जा रही थी। उसी शाम आकाश पर एक तरफ़ नारंगी रंग का गुबार ऊपर उठा था मटियाले अंधेरे से लड़ता-भिड़ता हुआ। चलते-चलते एकाएक महसूस हुआ कि आबादी से दूर निकल आया हूं। एक पथरीला रास्ता मुझे उस स्थान तक ले आया। वह स्थान क्या था बस एक स्वप्नमय वातावरण था जिसमें मैंने अपने आपको घिरे हुए पाया। मैं वास्तव में उस तरफ़ कभी नहीं निकला था। वह एक स्वप्नमय दृश्य था। ताड़ के पेड़ों का एक झुंड मेरे सामने था। वह नारंगी रंग में

रंगा हुआ आकाश सामने ज़रा-ज़रा फ़ासले से चौगिर्दी कुर्सियों में घिरे चौकोर मेज़ और मेज़ों पर तरह-तरह के पेय और कहकहे लुंढाते जोड़े, ताड़ की कमर से लिपटे स्टैण्ड जिन पर मशालें रोशन थीं।

वातावरण में धीमी गति की हवा की मद्धिम सरसराहट और मशालों की घटती-बढ़ती रोशनी में बस एक मैं था जो अकेला था और मुझे विश्वास था कि ऐसे में कोई है जो मेरी प्रतीक्षा करता है।

मानो मेरा खयाल सच साबित हुआ। मैं एक तरफ़ बैठ गया था और मेरे चारों ओर मेज़ों पर तरह-तरह के पेय थे और कहकहे लुंढाते जोड़े। मैंने यों ही सामने निगाह की और इतने लोगों में उसे अकेला बैठे हुए देखा। वह जैसे कि प्रतीक्षा में थी, मेज़ पर झुकी हुई—उसके घने स्याह बाल सामने मेज़ पर झुक आए थे। क्या अर्ज़ करूं ? सुलेमान ने बहुत पहले उसकी फ़रऊन के रथ की एक घोड़ी के साथ उपमा दी थी। उसके गाल निरंतर जुल्फ़ों में प्रियदर्शनीय थे और उसकी गर्दन मोतियों के हारों में।

मैं देर तक बैठा उसे देखा किया कि ऐसा न हो कि उसका साथी उठकर कहीं गया हो और लौटकर आ जाए। लेकिन वह अकेली थी। और फिर मैं उठा हूं और बिना कुछ सोचे-समझे उसकी ओर बढ़ता चला गया हूं। उसने मेरी तरफ़ देखा और उसी तरह बैठी रही। मैं उससे क्या कहता। कुछ देर यों ही गुम-सुम खड़ा रहा। फिर मैंने साहस इकट्ठा करके कहा, "—देखिए मैं किसी को भी इतना उदास और अकेला नहीं देख सकता। उदासी तो मेरा साम्राज्य है। आप उस तरफ़ कैसे निकल आईं ?—फिर उसने मुझे अपने पास बैठने का इशारा किया।"

बोझिल हाथ वाला अपनी तरंग में था लेकिन इससे आगे उस अनादिकाल से उदास और अकेले ने कुछ नहीं सुना और उठ खड़ा हुआ।

"चलें भाई घास-फूस बहुत ज़्यादा है।"

उस समय दोस्तों की मुर्झाई और निढाल आवाजों ने उसे रोकना चाहा लेकिन वह बस उठ आया सुर्ख ईंटों के मार्गों तक। उसने देखा कि म्युनिसिपल कमेटी की एक खड़खड़ाती हुई लारी उसके आगे लैम्प पोस्ट रोशन करती चली जा रही थी।

ऊपर नारंगी से मिलते आसमानी रंग में अब अंधेरा कुछ-कुछ घुल गया था। वह चलता गया यहां तक कि ताड़ का एक अर्द्ध रोशन झुंड उसके सामने था। उसने अपनी धुंधलाई हुई आंखों से देखा कि घटती-बढ़ती रोशनी में जहां तक नज़र जाती थी, कुर्सियों से घिरे चौकोर मेज़ों पर तरह-तरह के पेय धरे थे और कहकहे लुंढाते जोड़े।

वह कहां निकल आया है। वह सपना है या वास्तविकता। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह एक तरफ़ बैठ गया। उसने चारों ओर निगाह डाली।

कोई भी तो नहीं था जो उसकी तरह अकेला और उदास हो।

चौगिर्द मेज़ों पर कहकहे लुंढाए जा रहे थे, सब संतुष्ट और प्रसन्न थे। किसी को किसी का इंतज़ार नहीं था।

उसने बहुत इंतज़ार किया।

उस एकल आत्मा का जो इस सांसारिक कोलाहल में कहीं छुपी थी उन अरुचिकर तत्वों और कूड़ा-करकट में घिरी। लेकिन उसका कहीं पता नहीं।

वह बैठा रहा। यहां तक कि उसने खुद महसूस किया कि उसके चारों ओर एक ठंडा सन्नाटा फैल गया है। घटती-बढ़ती रोशनी में उसने देखा कि तमाम हंसते-मुस्कराते चेहरे शोभाहीन हो गए थे और ठंडा गहरा सन्नाटा जड़ें जमा चुका था।

अब उसके सामने डूबते निढाल अस्तित्व थे सांसारिक लोभ में हलकान—इंसानी पिंजर और उसकी नज़रें उनके आर-पार देख रही थीं।

यह सब उसके न चाहने के बावजूद हुआ था। वह उठ खड़ा हुआ।

देख लिया इन पापों की गठरी को—कुछ हासिल नहीं।

वह बड़बड़ाता हुआ, तेज-तेज चलता, लम्बे कदम भरता वहां से निकल आया। उसने महसूस किया कि उसके पीछे अर्द्ध अंधेरे में जीवन धीरे-धीरे लौट रहा था।

ताड़ के झुंड में, उस मेज़ पर, जहां से अभी कुछ देर पहले वह उठकर चला आया था। संतुष्ट और प्रसन्न लोगों ने उसे अकेले बैठे हुए देखा।

वह जिसको फरऊन के रथ की घोड़ियों में से एक के साथ उपमा दी गई थी जिसके गाल निरंतर जुल्फ़ों में दर्शनीय थे और गर्दन मोतियों के हारों में। वह कुछ देर पहले वहां पहुंची थी।

अकेली और उदास—मेज़ पर झुकी हुई—उसके घने स्याह बाल सामने मेज़ पर झुक आए थे। जाने क्या चिंताएं थीं जो उसे घेरे हुए थीं। और एक यह ख़याल कि इस जीवन के फैलाव में कोई है—जो उसे आवाज़ देता है।

उधर वह था कि चला जा रहा था, उदासी और अकेलेपन में मगन।

अब उसका रुख़ अपने घर की ओर था।

घर क्या था, दुनिया और दुनिया वालों से बचाव का उपाय था। सुख-शान्ति का एकांतवास।

गुमशुदा कलमात
(खोए हुए धर्म-मंत्र)

बादलों के रंगीन बजरे स्वच्छ नीले आकाश पर तैर रहे थे। शाम का समय हो चला था और नदी एक हद तक शांत थी।

निचाई में आबादी के चारों ओर से गिरती हुई पगडंडियां इधर-उधर बिखरे लोगों और ढोर-डंगरों को समेटने लगी थीं।

"हा–हा" की डूबती-उभरती आवाज़ के रेलों में छड़ी की फटकार के साथ दाएं-बाएं तरह देकर निकल जाने वाली चुस्त गायें और दूध पीते बछड़े-बछड़ियां चारों ओर से चौकड़ियां भरते बढ़े चले आते थे। सामने सारी आबादी में चुप-चड़ांग थी और पगडंडियों के साथ घुटने-घुटने तक ऊपर उठी हुई फसलों में हवा फंसी हुई थी।

आज हर ओर फ़ीके काका की बातें थीं। उसके नेकबख़्तों और अच्छे स्वभाव की और बीती हुई कई सदियों की न ख़त्म होने वाली बातें। दरअसल मिर्ज़ा मुग़ल बहादुर के जी में जाने क्या आई थी कि उन्होंने बड़ी हवेली में काका और आबादी के तमाम मर्दों का खाना कह दिया था। यह निःसन्देह आश्चर्यजनक बात थी।

फ़ीका जिसकी पहचान उसके बाप के हवाले से नहीं मां के हवालों से थी। फ़ीके ने आज तक हर छोटे-बड़े के पांव दाबे और तलवे चाटे थे। वह सबके टुकड़ों पर पला था और उसकी मां ख़ुद कहा करती थी—"फ़ीके का ख़मीर भी सबके टुकड़ों से उठा है।"

आज मिर्ज़ा बहादुर ने फ़ीके को इज़्ज़त बख़्शी थी। आप बहादुर फ़ीके के चार बैते सुनना चाहते थे और बड़ी हवेली में इस अनोखे समारोह का आयोजन किया गया था।

मुग़लों के एक कमरे में फ़ीके काका के चारों ओर सब जमा हो रहे थे और

वह खाट पर बैठा, सामने को आधा झुका हुआ थोड़ी-थोड़ी देर बाद खांस रहा था। किसी ने उसका मोटा खुलधला धो दिया था। पहले उसे वह पहनाया गया जिसमें धुलने के बाद ख़ास तरह की सख़्ती आ गई थी। काका के चेहरे और हाथों की झुर्रियां कपड़े की सख़्त शिकनों में एक हो गई थीं फिर किसी ने उसके गले में पीले रंग का नया दस्तरख़्वान बांध दिया और हाथ में रखने के लिए मुनक़्क़श (उत्कीर्ण, चित्रित) हाकी, जिस पर पत्तियां और कोके लगे हुए थे, फीके काका के जुड़े हुए घुटनों के बीच रख दी गई थी ऊपर उसका सफ़ेद सिर दाएं-बाएं झूल रहा था। फीका काका शुक्रगुज़ार (कृतज्ञ) आंखों के साथ हर तरफ़ देखा किया। हवेली से बुलावा आने पर यहीं से सबने काका को साथ लेकर आगे बढ़ना था।

बाहर आधा सुर्ख़ आकाश सुर्ख़ी में रंग गया था और रंगीन बजरे एक ही मटियाले रंग में एकत्रित होकर छतरी बन गए। फिर हवेली की ओर चलने का हौका हुआ—काका को अपने साथ लिए हुए रुक-रुककर चलता हुआ क़ाफ़िला आबादी से निकल आया। सामने एक कोस परे दरिया के चौड़े पाट के ठीक किनारे पर हवेली खड़ी थी जिसका पूर्वी किनारा बहुत हद तक दरिया के कटाव में बैठ गया था।

बड़े दरवाज़े पर दो मशालें रोशन होती गईं। मशालों की उमड़ती हुई ज़र्दी में मुग़लों का घुड़दौड़ मैदान ख़ामोश था और ख़ामोश हवा क़ाफ़िले के साथ-साथ दबेपांव चली आई थी।

फीके काका के स्वागत के लिए, मिर्ज़ा बहादुर हवेली के बड़े दरवाज़े तक ख़ुद चलकर आए। तमाम निगाहें उनके पांव की कामदार जूतियों से ऊपर न उठती थीं और ऊपर लशलश करती भारी चादर का घेर था।

"दुश्मन ज़ेर—ख़ुदा लंबी हयाती दे।" सब वहीं ठहर गए।

फिर कामदार जूतियों ने मार्गदर्शन कराया।

शस्त्रागार की दुतरफ़ा कोठरियों की पंक्तियों को पार कर उजाड़ ऐशबाग़ की गुमनाम रविशों से होता हुआ यह क़ाफ़िला हवेली के मदनि तक आया जहां दावत का इंतज़ाम किया गया था।

गिरे हुए कंगूरों वाले फ़व्वारे के एक ओर नदी की दिशा में खुली बाल्कनी के आगे पर्दा खींचकर मसनद के लिए जगह बना दी गई थी। सामने फ़व्वारे के गिर्दागिर्द रैयत के बैठने की जगह थी।

मिर्ज़ा बहादुर ने लपक कर फीके काका को अपने साथ मसनद पर घसीट लिया। साधारण लोग सामने नीचे में दम साधे हुए थे। मिर्ज़ा बहादुर ने पहले खंखारकर गला साफ़ किया, फिर पाटदार आवाज़ में बोले : "तुम सब नहीं जानते कि हवेली के मदनि में आज कितने सालों बाद रौनक़ लगी है। तुम नहीं जानते कि यह सब क्यों है। तुम यह भी नहीं जानते कि यह हिस्सा जहां हम इस समय

बैठे मजलिस कर रहे हैं, कभी नाचघर हुआ करता था। तुम्हारे दाएं हाथ मैकदे (मदिरालय) का मलबा है और इसके आगे दरिया की सरकश (विद्रोही) लहरें। उस तरफ खुले में 'ऐशबाग' और उसकी गुमनाम राहदारियां हैं, कभी उन राहदारियों के नाम हुआ करते थे। फीके काका ने बड़े मुगलों की आंखें देखी हुई हैं और वह ज़माने भी। मुनासिब यही है कि पहले वह कुछ कहें, फिर आम रोटी होगी। कहो फीके तुमने जो देखा है उसके बारे में हम महज़ सुन पाए हैं।"

काका ने कुछ कहना चाहा और कहते-कहते रह गया। फिर उसने अपने सीने में गहरा सांस भरा और बहुत निर्बल स्वर में बोला, "हजूर, मैं ऐशबाग की तमाम गुमनाम राहदारियों के नाम नहीं गिना सकता, अलबत्ता उनमें से एक गुमनाम मेरी अपनी मां थी। लोग कहते थे उस नेकबख़्त के जिस्म की कसावट का चर्चा आम था। उसके फुर्तीले अंग ने जब जवानी की पहली अंगड़ाई तोड़ी तो खुदा माफ़ करे बड़े मिर्ज़ा मुगल बहादुर ने उसे अकेले में दूसरी अंगड़ाई नहीं लेने दी। उसके पैरों के नर्म स्वभाव इसी नाचघर में अपनी मासूमियत गुम कर बैठे। लोग कहते हैं कि उस समय मेरी मां सिर्फ तेरह बरस की थी। वह इस नाचघर से ऐशबाग और एकांतवास से होती हुई घुड़दौड़ के विस्तृत मैदान तक पहुंच गई। मुगल बहादुर के ताज़ी घोड़ों ने मैदान में इतने चक्कर नहीं लिए होंगे जितनी बार मेरी अल्पवयस्क मां ने रात की तारीकी में तबेलों और अस्तबलों से पलटन के सिपाहियों की छावनी तक के चक्कर काट लिए। समय की लोरियों में थकावट का समन्दर ठहर गया था। समन्दर जब कभी करवट लेता सारी कथा बयान करता।"

उस दिन बादल घिरकर आए हुए थे। दूर तक उजाड़ ग़ैर-आबाद मैदान थे। कौन था जिसने इस लक़-दक़ सारे में कांटे बो दिए। वह यक़ीनन मिर्ज़ा मुगल बहादुर नहीं थे, मेरी मां की जवानी थी और उसके बदन की कसावट।

जब कांटों की फसल तैयार हुई तो जाने कहां से फीका भी कांटों के साथ फूट पड़ा था। उस रात भी ज़ोर का मेह बरसा था और फीके की मां पैरों तले शोरा ज़मीन पर फीके के जन्म-स्थान हवेली को निकल जाने वाली गुज़रगाह थी।

हां तो वह पूस-माघ की कोई ठिठुरी हुई रात थी और गुज़रगाह पर फीका उग आया था। ठंडी, सनसनाती हुई हवा को उसकी जड़ों की तलाश थी। सारे में कोहरे और कल्लर की मोटी तहें जमी हुई थीं। छावनी में सिपाही और बाड़ों लगी कोठरियों में जोकी आराम की नींद सो रहे थे। फीके को घुट्टी में शोरा मिला था। सिर पर नीला आसमान और बादलों की आवारा टुकड़ियां। फीके की मां ने ठंडी हवा की उंगली थामी। हवा जड़ों की तलाश में तन्मय थी।

फ़ीका बदबख़्त अपनी मां के पीछे बाड़ों, सिपाहियों की अंधकारमय कोठरियों, खेतों और खलियानों में पंजों, एड़ियों और घुटनों के बल चलता रहा। उसके पांव के नाख़ून उखड़ गए, एड़ियां सूज गईं और घुटनों की हड्डियों के खोल सरक गए।

जब फ़ीके को होश आया तो बाड़े के बाहर शाम धीरे-धीरे उतर रही थी। वह मां को छोड़कर नंग-धड़ंग दौड़ता चला गया। बड़ी हवेली के बाहर मुग़ल बाबा लोग 'सालह' खेल रहे थे। वह अपने जन्म से हवा की उंगली थामे दौड़ता आया था। हज़रत साहब के दरबार की ओर निकल गया। उसने छोटे मुग़ल बहादुर, जो यक़ीनन आप ही थे, की 'सालह' अपनी हथेलियों पर थाम रखी थी। दरबार के सामने कीकरों की पंक्ति में हरे सुर्ख़ और फूलदार झंडे लहरा रहे थे। वह ठहर गया। देर तक ठंडी हवा में झंडों की फड़फड़ाहट सुनता रहा। दूर से आप बहादुर ने पुकारा तो दरबार की ओट में हो गया। फ़ीका उस समय तक वहां बैठा रहा जब तक बाबा लोग उसे दुरफिट कहते हवेली को वापस न चले गए। फिर वह उठा और उसने कीकरों पर लहराते हुए सारे झंडे उतार लिए। रंगीन रेशमी कपड़ों की निशानियां, जिनमें तांबे के सूराख़दार पैसे, छोटी-छोटी ख़ुशियां, उम्मीदें और तमन्नाएं लटक रही थीं, सब उसने उतार लीं।

अगले रोज़ आबादी में जब पहला मुर्ग़ा फड़फड़ाया तो फ़ीके ने आंखें खोलीं। वह दरबार की चौखट पर झंडों के अंबार तले सीढ़ियों के साथ पड़ा हुआ था। उसने शाम तक वहीं बैठे-बैठे कीकर के कांटों से सब झंडों को जोड़कर ओढ़ लिया था। उसने सूराख़दार तांबे का हार बनाकर गले में पहना और दरबार की सीढ़ियों के नीचे छुप गया जहां से कई दिन बाद मां ने बड़ी मुश्किलों से बाहर निकाला था।

अस्तबलों, बाड़ों और सिपाहियों की कोठरियों तक वह मां के पीछे-पीछे था। झंडे ओढ़े हुए और गले में सूराख़दार पैसों के हार खनखनाता।

तुममें से कौन-कौन है जिसने उसे चांदनी रातों में चमकदार सालह के पीछे अकेले दौड़ते हुए देखा है ? उसने अपने उखड़े हुए नाख़ून, सूजी हुई एड़ियों और घुटनों के सरके हुए खोल को कीकर से उतारी हुई निशानियों के साथ कसकर बांध रखा था। चांदनी रातों में बंजर मैदानों पर दौड़ते हुए वह हर चीज़ से बेपरवाह बढ़ता चला जाता था।

वह किसी काम का नहीं था लेकिन चारों ओर लहलहाते खेतों की देखभाल करते-करते ऊब गया था, फ़ीके के पास कोई काम नहीं था। ढोर-डंगरों को डराने की ख़ातिर लहलहाते खेतों के बीच वह जीता जागता 'बेचा' बन गया।

फ़ीके को खेतों के बीचोंबीच खड़ा देखने मिर्ज़ा मुग़ल बहादुर ख़ुद तशरीफ़ लाए। उस समय फ़ीके के सिर पर बड़ी-सी पगड़ी थी। उसने रंगीन झंडों का घुटनों तक लंबा कुरता पहन रखा था और गले में तांबे की माला झूल रही थी। उसकी दोनों बांहें कंधों तक ऊपर उठी हुई थीं। मुग़ल बहादुर मूंछों में मुस्काए और फ़रमाया, "फ़ीका इस पगड़ी में कितना प्रतिष्ठित दिखाई दे रहा है।"

फ़ीका बदबख़्त इसी पर ख़ुश था। दोनों बांहें फैलाए खड़ा रहा। मौसम गुज़रते रहे और चारों ओर लहलहाती हरियाली, पेच-दर-पेच पगडंडियों पर उसकी साथी हवा

गीत बुनती रही। चुस्त गाय और कुलेलें करते बछड़े के गीत, घुड़दौड़ के मैदान में उतरती हुई रात की कहानी, जिसमें अस्तबल और बाड़े से उठती-गिरती लड़खड़ाती बू की बिसांद थी।

फीके ने प्रायः तपती दोपहरों और ठिठुरी हुई लंबी रातों में अपनी मां के पीछे घुटनों और पंजों के बल लपकते हुए प्यादों और जोकियों की टुकड़ियां देखीं। लोग कहते हैं कि केवल साल भर में उसके कसे हुए बदन से असहनीय बू उठने लगी थी और वह खून थूकती हुई बीत गई।

फीके कमबख़्त को तो मिर्ज़ा मुग़ल का एक मीठा बोल पाबंद किए हुए था। वह 'बेचा' बना रहा था। ठाठें मारती हरियाली के सागर में दोनों बाहें फैलाए अपने मालिक का पाबंद..."

फीके काका की आंखें मुंदी हुई थीं और उसकी आवाज़ धीरे-धीरे डूब रही थी। वह बीते हुए ज़मानों में डुबकी लगा गया था। अपार विस्तार सामने था। वह सारे को गिरफ़्त में लेना चाहता था। उसके सामने डूबे हुए स्टीमर थे। टूटे हुए स्टीमर के स्तंभ। गहरी नीलाहटों में लुप्त होते हुए। उसके गिर्दागिर्द भूखी शार्क मछलियां सनसनाते हुए तीरों की तरह गतिमान थीं और वह अनगिनत घोंघों और बिना खिले सीपों के अंबार में दबता जा रहा था।

सहसा मसनद पर पेश के गाव-तकिए से टेक लिए फीके काका ने मिर्ज़ा बहादुर की ओर टांगें सीधी कर लीं। वह ऊंघ गया था।

मिर्ज़ा बहादुर की ठोड़ी पर पेचवान की नै ठहर गई। हुक्के के पेंदे में पानी की गड़गड़ाहट ने दम साध लिया। हर ओर गहरी चुप्पी थी। सामने उकडूं बैठी हुई रैयत का सांस सूखने लगा। फिर फीके काका ने बीते ज़माने की गहरी तहों से झुरझुरी ली।

"खुदा यह झोक आबाद रखे। हुज़ूर अब मैं उन वक़्तों का किस्सा कहता हूं जब फीका जवान था और उसने मुग़ल बेगम सराय के ठीक नीचे लहलहाती फसलों में पूस-माघ की लंबी रातें गुज़ारी थीं। उसकी बाहें कंधों तक उठी हुई थीं और छाती पर तांबे का हार हवा में लहरिए ले रहा था। उन लंबी रातों में से एक रात का बयान करता हूं।

उस रात हवेली में ठीक उस जगह रोशनी की लकीर पड़ी जहां बेगमों की सराय थी। बाहर खुलने वाली खिड़की के पट देर तक अध-खुले रहे। मैं वहां ठहरा रहा और देखता रहा। फिर लालटेन की पीली रोशनी देर तक आगे-पीछे झूलती रही। यह बुलावा किसलिए था। मैंने चारों ओर घूमकर देखा। दूर-दूर तक हरियाली का ठाठें मारता समन्दर था जिसके बीच एक अकेला केवल मैं ठहरा हुआ था।

अंधकार में जब किसी ओर से भी कोई हरकत न हुई तो मैं चल पड़ा। धीरे-धीरे अध-खुली खिड़की में एक चंदमुखी का चेहरा स्पष्ट होता गया। मैं कोई

बीस कदम पीछे रुक गया था कि हुक्म हुआ, "अन्दर आओ।"

मुझ दुष्ट में इतनी हिम्मत कहां थी और फिर मेरी दोनों बाहें कंधों तक उठी हुई थीं। सुरीला झरना फूटा, "बाहें गिराओ और आ जाओ।"

मैंने ऐसा ही किया। उस चंद्रमुखी ने खिड़की के पट भेड़ दिए और कमरे की मद्धिम पीली रोशनी में नहा गई। ऐसी रोशनी मैंने मां के साथ बाड़ों, अस्तबलों और पलटन के सिपाहियों की अंधेरी कोठरियों में देखी थी। ऐसे में हमेशा मैं उस मद्धिम पीली रोशनी में नहाई मां को छोड़कर बाहर आ जाता था। खुले मैदानों में अकेला 'सालह' खेलता रहता था।

वह चंद्रमुखी उस ज़र्दी में नहा रही थी और मैं आदत से मजबूर।

मैं पलटा। खिड़की के पट खोले और बाहर कूद गया। मेरे गले में ढीली पगड़ी झूल रही थी और तांबे का हार घुटनों पर बज रहा था। मैं घुड़दौड़ के मैदान की ओर निकल गया। पलटन की कोठरियों में झांकता फिरा। मैं बचपन के परिचित चेहरों की तलाश में था। अंततः मैं उस तलाश में कामयाब हुआ। मुझे एक परिचित चेहरा मिल ही गया। मैंने उस खांसते हुए हड्डियों के पिंजर को अपने कंधों पर लादा और बेगमात की सराय तक ले आया। मैं शायद आपको पहले बता चुका हूं कि वह पूस-माघ की एक लंबी रात थी। खिड़की के पट उसी तरह खुले थे और वह ज़र्दी में नहाई बेसुध थी। मैंने हड्डियों के उस पिंजर को वहां उतारा और बाहर आ गया।"

फीके काका की आवाज़ एक बार फिर धीरे-धीरे डूबने लगी। वह बीती हुई सदियों की खोज में था और असीम विस्तार सामने था। मिर्ज़ा मुगल बहादुर की ठोड़ी पर पेचवान की नै ठहरी हुई थी और चेहरे पर एक रंग आता और दूसरा गुज़र जाता था। सामने निचाई में उकडूं बैठी हुई रैयत की सांसें एक बार फिर सूख रही थीं।

बादलों के रंगीन बजरे स्वच्छ नीले आकाश पर छतरी बने खड़े थे और बाहर हवेली की बुनियादों में दरिया शांतिमय सांस ले रहा था।

जन्म जोग

मुझे उधर जाना था लेकिन वक़्त पर जा नहीं सका।

गंदले पानी की नहर के रुख़ पर उस उजाड़ हवेली तक जो मेरे बचपन और लड़कपन की सीमा पर आबाद थी और जिसे मेरी जवानी से बुढ़ापे तक के सफ़र ने उजाड़कर रख दिया !

वह मेरा लड़कपन था और हमारे घर के करीब बहने वाली गंदले पानी की नहर के दोनों तरफ़ दूर तक फैले हरियाले इलाके गर्मियों की लम्बी दोपहरों के शरण-स्थल थे। आमों के घने बाग़ मेरे गुज़रने के मार्ग थे और बाग़ों के रखवालों के हाथों में घूमने वाली गुलेलें और हरियल तोतों के झुंड के झुंड।

बस वही दिन थे जब मैंने पहली बार एक ही समय नहर के गंदले पानी में तैरकर आती हुई कई कटी-फटी इंसानी लाशें देखीं और शाम को आबादी से छिड़काव गाड़ी गुज़र जाने के बाद एक-एक करके रोशन होते हुए लैम्प-पोस्ट और सिनेमा की बग्घी का फेरा। इसके बाद यह सब नित्य नियम का हिस्सा बन गया।

सारा दिन इसी आवारगी में गुज़र जाता। रात् गए घर को पलटता तो सब घर वाले सोए हुए मिलते और अर्द्धनिद्रा की अवस्था में डूबा हुआ अर्दली खाना गर्म कर देता। बस यही मेरा घर से रिश्ता था। मैं भी खाना खाकर सो रहता और मेरे चारों तरफ़ गंदले पानी में कटी-फटी इंसानी लाशें तैरती रहतीं।

एक रोज वालिद साहब ने थानेदार की वर्दी उतारकर खूंटी पर टांगते हुए फरमाया—"ये लोग थे ही इस काबिल। इनका कौन है रोने वाला ? लेकिन मेहड़ पुलिस ने अपनी सीमा से उन्हें इस तरफ़ हांककर हमें मुश्किल में डाल दिया। ये आमों के बाग़ न होते और इतनी बहुत-सी सूखी टहनियां नहर तक न झुक आतीं तो आगे जाकर सड़ते कुत्ते के पिल्ले।"

अगले रोज़ शाम के वक़्त कमेटी की छिड़काव गाड़ी गुज़र गई तो उन सड़ती हुई लाशों को नहर के गंदले पानी से निकालकर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया।

घड़ियाल वाले चौक में लैम्प-पोस्ट रोशन हो गए तो नित्य-नियम अनुसार सिनेमा वालों की बग्घी गुज़री। बग्घी के साथ इंसानी कद के बराबर फिल्म के इश्तिहार झूल रहे थे और हिचकोले खाती सीट पर ग्रामोफ़ोन धरा था। सिनेमा वालों का चुस्त कार्यकर्ता बग्घी रुकवाकर पहले साउंड बाक्स की सुई बदलता और फिर सहज-सहज ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड बदलता रहता। कुछ देर चौक में रुककर और घुमाऊ गुलेल की तरह ठहरी हुई जिंदगी को नई करवट देकर बग्घी आगे बढ़ गई और मैं सड़ती हुई लाशों के साथ गंदले पानी में अकेला रह गया।

बस वही दिन थे कटी-फटी लाशों के साथ सूखी हुई टहनियों का सहारा लिए हुए ग्रामोफ़ोन की प्राप्ति की धुन दिल में जाग उठी।

क्षमा कीजिए मैं शायद फिर बहक गया। बेहूदा बातें करने के सिलसिले में मैं हमेशा बदनाम चला आया हूं लेकिन खुदा की कसम टीका-टिप्पणी मेरा आशय नहीं।

मेरी मुश्किल यह है कि आमों के बाग़ में गंदले पानी की नहर की ओर एक वीरान हवेली भी थी और जब मैंने शाम की अज़ानों के साथ पहली बार इस हवेली में कदम रखा था तो इस हवेली के विशाल आंगन में एक प्रतिष्ठित महिला मिट्टी के कूज़े भर-भरकर छिड़काव करने में तल्लीन थी।

मैं चारदीवारी की ओट में चुपचाप दम साधे उसे इस काम में व्यस्त देखता रहा। छिड़काव के बाद उसने आंगन में एक-एक करके दो कुर्सियां लाकर रखीं, बिल्कुल आमने-सामने। फिर वह दोनों कुर्सियों को देर तक खड़ी तकती रही। इसके बाद वह एक तिपाई उठा लाई और तिपाई पर उसने ग्रामोफ़ोन सजा दिया।

ग्रामोफ़ोन को अच्छी तरह झाड़-पोंछकर, वह एक बार फिर अंदर गई और पीतल की ऊंची केतली और दो प्यालियां उठा लाई। केतली में भरी गर्म हरी चाय की खुशबू लपटें ले रही थी। फिर उसने कुर्सी पर बैठते हुए अपने बराबर की तिपाई पर रखे ग्रामोफ़ोन को खोला, उसमें चाबी भरी, साउंड बाक्स को फूंक मारकर साफ किया, उसकी सुई बदली और देर तक बारीक तीलियों की पिटारी में रखे रिकार्ड उलटती-पलटती रही।

शाम की अज़ान तक वह जैसे किसी की प्रतीक्षक रही। और मैं उसे छुपकर देखता रहा। शाम के मटियाले अंधेरे के पूरी तरह छा जाने तक वह अकेली बैठी रही थी और उसके बाद उसी क्रम के साथ उसने आंगन में रखी तमाम चीज़ों को एक-एक करके अंदर पहुंचाया था।

वह किसके आगमन की प्रतीक्षक थी ? वह कौन था जिसने आना था पर नहीं आया। बस यही कुछ जानने की खातिर मैंने अपनी कई शामें उस हवेली की चारदीवारी में दम साधे, छुपकर गुज़ार दीं लेकिन आने वाले ने नहीं आना था, न आया। पर वह कौन था जिसका उसे इंतज़ार था ?

मैंने किसी से पूछा नहीं। पूछता भी तो किससे ? किसी को इतनी फ़ुर्सत कहां थी जो मेरे व्यर्थ सवाल पर ध्यान देता। घर में खूंटी पर टंगी थानेदार की वर्दी थी और बाहर आमों के गुप-चुप बाग़। हरियल तोतों के झुंड और घुमाऊ गुलेल की सनसनाहट और या फिर नहर के गंदले पानी में तैरती हुई कटी-फटी लाशें, छिड़काव गाड़ी के व्यस्त कार्यकर्ता और सिनेमा वालों की बग्घी के फेरे।

बस समय यूं ही गुज़र गया।

फिर हम लोग शहर चले आए और कई वर्ष तक उधर जाना ही न हुआ। लेकिन ग्रामोफ़ोन की प्राप्ति की इच्छा दिल में वैसी की वैसी रही। कई वर्ष गुज़र गए।

मैं कालेज में पढ़ रहा था जब घरवालों के साथ शायद किसी रिश्तेदार की मृत्यु पर उधर जाना हुआ। शोक प्रकट करने और मोक्ष के लिए प्रार्थना करने के बाद मैं वहां से निकल खड़ा हुआ।

शाम का समय रहा होगा जब मैं यूं ही घूमता-घूमता हवेली की तरफ़ निकल गया। चारदीवारी पार कर मैंने देखा कि हवेली का विशाल आंगन बिल्कुल खाली था। अर्द्ध अंधेरे बरामदे और लालटेन की मद्धम रोशनी में मैंने उसे पहचान लिया। वह बहुत बूढ़ी हो गई थी और आहिस्ता-आहिस्ता झुककर चलते हुए उस वक़्त वह ज़मीन पर बिखरे हुए बर्तन समेट रही थी।

मैं उस दिन बिना झिझक और बिना इजाज़त बरामदे तक चला गया था। पक्की ईंटों के फ़र्श पर उठते हुए मेरे क़दमों की आहट पर उसने पलटकर देखा। दाहिनी हथेली को आंखों पर लाते हुए उसने मुझे पहचानने की कोशिश की और आश्चर्य के साथ कुछ देर तक मुझे तकती रही।

"मैं हामिद हूं।"

"हामिद ?" उसने पहचानते हुए मेरा नाम दोहराया।

"थानेदार का बेटा हामिद... मैं शहर से आया हूं। अब हम वहीं रहते हैं।"

"बिस्मिल्लाह...आओ...आ जाओ हामिद—इधर आओ। मैंने ठीक तरह कभी तुम्हें देखा ही नहीं।"

मैं आगे बढ़ा तो उसने झुककर लालटेन उठा ली और मेरे चेहरे तक लाते हुए देर तक अपनी धुंधलाई हुई आंखों से मुझे तकती रही। फिर उसने मुझे माथे पर चुंबन दिया और बोली, "माशा अल्लाह जवान हो गए हो। तुम्हारा बाबू कैसा है ?"

"ठीक हैं जी। बस कुछ बूढ़े हो गए हैं। पिछले साल तो ठीक-ठाक थे पर अब घुटनों में तकलीफ़ रहती है उन्हें। चलना-फिरना बहुत कम हो गया।"

"हां तुम भी तो जवान हो गए।"

"बस जी आपके सामने हूं।"

"खुदा तुम्हें लम्बी उम्र दे। बाप का साया कायम रखे। मुझे अब दिखाई नहीं देता। ऑपरेशन करवाया था पहले एक आंख का, फिर दूसरी का लेकिन नज़र ठहरती नहीं। ढोर-डंगर संभाले नहीं जाते, इसलिए बेच दिए। अब ग्वाले तक जाना पड़ता है दूध की खातिर। अभी-अभी लौटी हूं उधर से। तुम्हारा बाबू चाचा तो इधर होता है ना—नेकबख़्त है। वे लोग उसे आने ही नहीं देते इधर। अब तो सुना है बीमार रहता है। एक खत आया था इस साल भादों में, छुट्टी मिलेगी तो आएगा।"

उस दिन मुझे मालूम हुआ कि प्रतीक्षा की उम्र इतनी लम्बी भी हो सकती है।

"बैठ जा ना इधर मूढ़े पर। सुना कैसे आया था, ख़ैर तो है ना ?"

"वह...मां जी हम सब इधर आए थे मोहन पुरा में दुआ के लिए। शाम को वापस चले जाना है हमने। मैंने सोचा इधर से भी होता जाऊं।"

"हां बेटा, अच्छा किया। खून का आकर्षण होता है। खींचता है अपनी तरफ़।"

"वह मां जी..."

मुझसे ज़्यादा देर रहा नहीं गया।

"वह एक ग्रामोफ़ोन था आपके घर में—"

"हां रखा है। तुम्हारे बाबू चाचा कभी लाए थे। अंदर पड़ा है, मुझसे तो संभाला नहीं जाता—"

"मां जी अब तो बाबू चाचा भूल-भाल गए होंगे इसे..."

"हां भूल गया...तुझे चाहिए ? तो ले जा..."

"हां मां जी मुझे अच्छा लगता है।"

"तो ले ले ना।"

मैं व्याकुल होकर उठ खड़ा हुआ।

"वह अंदर रखा है। नीचे पिटारी में रिकार्ड भी होंगे। लेकिन इतने पुराने रिकार्ड अब तुझे क्या भाएंगे। नये ले लेना शहर से।"

यह सुनकर मैं वहां और कितनी देर रुका, कुछ याद नहीं। बस इतना याद है कि अर्द्ध अंधेरे सीलनग्रस्त कमरे से उसे उठा लाया पुराने रिकार्डों की पिटारी समेत। फिर शहर क्या आया यहीं का होकर रह गया। कालेज, कालेज से यूनिवर्सिटी। पहले शिक्षा प्राप्ति के सिलसिले में जकड़ा रहा, फिर लम्बी बेरोज़गारी काटी। नौकरी मिली तो शादी और गृहस्थी के झमेलों में पड़ गया। ग्रामोफोन पर गर्द जमती चली गई।

ऐसा नहीं कि उधर जाने का ख़्याल नहीं आया बस एक के बाद दूसरे कार्य में उलझता रहा। यह ज़िंदगी का फैलाव मार गया, बहुत झमेले हैं। छोटे-छोटे काम, देखने में बहुत मामूली, महत्वहीन लेकिन उन्हें किए बिना छुटकारा भी नहीं। बहुत से काम निपटा चुका तब भी टेलीफ़ोन के बिल का झगड़ा अभी बाकी है। रसोई गैस के बिल की शुद्धि और प्रापर्टी टैक्स की समस्या, पे-बिल को कम्प्यूटराइज करवाने

के लिए अकाउंट्स आफ़िस का चक्कर अभी रहता है और इसी में विलंब हो गई।

उधर से अंतराल-अंतराल के साथ शहर आए हुए व्यक्तियों से मुलाकात होती तो जी चाहता कि सब कुछ छोड़कर निकल जाऊं। कई बार सोचा बड़े बेटे को सख़्ती से कहूं कि उधर से चक्कर लगाकर आए। यह मालूम कर आए कि अब हवेली के दिन-रात कैसे हैं लेकिन उसे समय ही नहीं मिलता। जाने कहां रहता है ? हमेशा कहता रहा अब्बू ! कालेज में बहुत व्यस्तता है। एक दिन के लिए भी अनुपस्थित नहीं रह सकता। उसने कभी उधर जाने से इंकार नहीं किया लेकिन गया भी नहीं।

शहर के अपने मामले हैं। उधर जाता तो विलंब से आने पर विवशता अभिव्यक्त कर देता।

यही कुछ सोचता आया हूं।

लेकिन आज मामला ही कुछ ऐसा आन पड़ा कि लज्जा के एहसास ने कहीं का नहीं रहने दिया और मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर सूचना मिलते ही निकल खड़ा हुआ हूं।

वह एक सूचना जिसका मुझे हमेशा धड़का लगा रहा।

आज सुबह, नियमानुसार अपने दफ़्तर में बैठा फ़ाइलें निमटा रहा था कि विशेषकर मुझ ही को सूचित करने गांव से एक भलामानस चला आया। मालूम हुआ कि हवेली एक ही समय में उजड़ी और फिर से आबाद भी हो गई।

"वह कैसे ?" मैंने अधीर होकर पूछा।

"जी कल रात चालीस साल बाद बाबू चाचा हवेली लौट आए। लेकिन जब आए हैं तो मां जी गुज़र गई ?"

"गुज़र गई ?"

"अंतिम दिनों में आपको याद करती थीं।"

"मुझे ? मुझे याद करती थीं ?"

मेरे चारों ओर सड़ती हुई लाशों के अंबार लगते गए। एक के बाद एक गंदले पानी में बहकर आती हुईं।

"देखते नहीं कितना अंधेरा है...कमेटी वाले आज लैम्प-पोस्ट रोशन करना भूल गए क्या ?"

"जी—जी मैं तो आपको सूचित करने आया था, आप आ रहे हैं ना ?"

"हां-हां आ रहा हूं।"

यह देखने के लिए कि अब उस हवेली का एकल निवासी किस हाल में है। वह, जिसने अपनी जवानी में शादी के बाद शायद दो रातें भी उस हवेली में न गुज़ारी थीं।

यह सब पुरानी बातें हैं और इस समय जबकि मैं बुढ़ापे की चौखट पर क़दम रख चुका हूं तो मुझे उधर जाना है और उसे देखना है जो इतनी मुद्दत बाद पलटा

तो उसे हवेली खाली नहीं मिली। उन धुंधलाई हुई प्रतीक्षक आंखों ने उसे 'स्वागतम' कहा और हमेशा के लिए मुंदती चली गई।

फिर मैं चला आया सब कुछ छोड़-छाड़कर। उसी अर्द्ध अंधेरे सीलनग्रस्त कमरे में जहां से मैंने ग्रामोफ़ोन उठाया था पुराने रिकार्डों समेत।

हवेली में बाबू चाचा और मैं आमने-सामने बैठे थे। उन्होंने मुझे नहीं पहचाना। पहचानते भी तो कैसे ? उन्होंने कुछ भी तो जवाब में नहीं कहा था, मैंने कोई सवाल ही नहीं किया था।

"आपको देखने और मां जी के लिए दुआ करने हाज़िर हुआ था।"

"हां बेटा मौत सत्य है। यह एक औपचारिक कार्रवाई किए लेते हैं।"

दुआ के बाद मैंने पूछा, "अब आप इस हवेली में अकेले रहते हैं। क्या महसूस करते हैं उनके चले जाने के बाद ?"

वे देर तक खामोश रहे, फिर बोले—"मैं उसका गुनाहगार हूं यह माना लेकिन मैं घृणा योग्य था। उसे जवानी में छोड़कर निकल गया फिर भी उसने मुझसे कभी घृणा नहीं की। ऐसा करती तो खुदा की कसम मैं बहुत पहले लौट आता। इंतजार वह करती रही और हलाक मैं होता रहा। पर अब जबकि मुझे उसकी ज़रूरत थी तो वह गुज़र गई।"

बाबू चाचा बोलते रहे और मैं बैठा सुनता रहा।

वापसी पर आम के बाग़ों में नहर के साथ-साथ चलते हुए मैंने देखा कि गंदले पानी पर झुकी हुई सूखी टहनियां काट दी गई थीं और बहकर आने वालों को थामने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था।

ज़मीन जागती है

अन्धेरा बढ़ता जा रहा है और हर ओर सन्नाटा है।

"सुन रहे हो कुएं में से चलते पानी की आवाज़ आ रही है, जैसे नदी बहती हो।"

"लेकिन कभी ऐसा देखा न सुना।"

"हां कभी नहीं।"

दोनों एक बार फिर अन्धे कुएं की मुंडेर से कान लगा देते हैं।

"वह अभी रास्ते में होंगे।"

"हां अगर बहुत जल्दी भी पहुंचे तो आधी रात से पहले क्या पहुंचेंगे।"

वह सीधे होकर आमने-सामने बैठ जाते हैं और एक-दूसरे की ओर देखते हैं। उनकी आंखों में सांप की आंखें हैं। "तो क्या तुम्हें विश्वास है, उन्हें दो ऐसे आदमी मिल जाएंगे, मेरा मतलब है जिन पर भरोसा किया जा सके ?"

"और जो बाद में उलझें नहीं।" दूसरे ने बात पूरी कर दी।

"हां जो बाद में उलझें नहीं। मुझे तो मुश्किल नज़र आता है।"

"और इतनी लंबी रस्सी—" वह बात को अधूरी छोड़ देता है।

"हां, रस्सी—लेकिन हम, मेरा मतलब है—" वह आंख झपकता है।

फिर दोनों तेज़ी से आंखें झपकते हैं।

"क्या रस्सी और आदमियों के बिना इसमें नहीं उतरा जा सकता ?"

"वह भी तो यही कहते थे, पर हमने खुद ही तो कहा था कि ऐसा मुमकिन नहीं।"

"और वह रस्सी और आदमी लेने चल खड़े हुए।"

दोनों हंसते हैं। पहले के ठहाके में दूसरे की आवाज़ दब जाती है और इसके बाद दूसरे का ठहाका बहुत बुलन्द है। फिर एकदम दोनों गंभीर हो जाते हैं।

"तो फिर ?" दूसरा पहले की ओर देखता है।

"लेकिन यह है बहुत गहरा। दिन के समय भी पानी नज़र नहीं आता।"

कुएं में झांककर कंकर उछालता है और दोनों एक बार फिर मुंडेर से कान लगा देते हैं।

"हैरत है।"

"बस यही तो बात है जिस पर दिल में हौल उठता है। शायद गहराई ज़्यादा होने के कारण आवाज़ नहीं आती।"

"गहराई ज़्यादा हो तो आवाज़ ज़्यादा आती है, छोटा-सा कंकर भी खन से बोलता है।"

"तो फिर क्या बात है ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूं।"

दोनों चुप बैठे रहते हैं। कुएं में मद्धिम आवाज़ रुक-रुककर आ रही है, जैसे पानी चल रहा हो।

"मेरा ख़्याल है यह आवाज़ पानी की नहीं है।" पहले ने एक बार फिर बात चलाई।

"पानी नहीं है तो बस आना-जाना ही होगा।"

"और अगर पानी हुआ ?"

दूसरे के पास इसका कोई जवाब नहीं। आवाज़ लगातार आ रही है।

"फिर ?" दूसरा पहले की ओर देखता है।

पहला कोई जवाब नहीं देता और कुएं में उतरने लगता है।

"तुम भी आओ, ज़रा ध्यान से। कुआं बहुत पुराना है, पांव फिसल-फिसल जाता है।"

"लेकिन" दूसरा उतरने में संकोच करता है।

पहला अब कुएं में फैली स्याही का हिस्सा बन चुका है। ऊपर से देखने पर नज़र नहीं आता।

"चले आओ" पहले की आवाज़ कुएं में गूंजती है।

"वह आ गए तो—" दूसरा बात पूरी नहीं करता।

"वह आ गए तो—वह आ गए तो—?" आवाज़ की गूंज सारे ब्रह्मांड को अपनी लपेट में ले लेती है। दूसरा जो इस कायनात (ब्रह्मांड) का एक हिस्सा है, केवल, एक बिन्दी...वहीं हतप्रभ खड़ा है।

पहला नीचे उतरता चला जाता है। जीर्ण ईंटें जगह-जगह से उखड़ चली हैं। वह धीरे-धीरे पैर जमाकर रख रहा है।

अब कुएं में सन्नाटा है और केवल उसके नीचे उतरने की मद्धिम सरसराहट सुनाई देती है।

"पानी—चलना—बंद—हो गया।" कुआं उसकी आवाज़ पर गूंज उठता है।

यकायक वही आवाज़ एक बार फिर शुरू हो जाती है। पानी चलने की आवाज़, जिसमें पहले की आवाज़ की गूंज शामिल है। कुछ पता नहीं वह क्या कह रहा है।

जब दोबारा सन्नाटा छा गया तो दूसरे ने उसे पुकारा—जवाब में उसको अपनी

आवाज़ की गूंज सुनाई देती है। वह उसे पुकारता चला जाता है, लेकिन कोई जवाब नहीं आता।

रात भीग चली है। अब उनके वापस लौटने का समय करीब़ है और पानी चलना बंद हो गया है।

फिर वह भी तेज़ी से नीचे उतरता चला जाता है।

कुएं में बहुत नीचे धूल ही धूल है। उसका दम घुटता है।

कुछ देर बाद दूसरे के पांव जैसे ज़मीन से टकराते हैं और उसके हाथों में पहले का हाथ आ जाता है, ऊपर को उठा हुआ। कुएं की तह में चारों ओर धूल-मिट्टी है, बीच में केवल उसका हाथ है जो कुहनियों तक भुरभुरी मिट्टी में दबा है।

अब कुएं में पूरी चुप्पी है। दूसरा ऊपर आने की क्षमता नहीं रखता और जैसे पानी की आवाज़ एक बार फिर आने लगती है।

बाहर वैसा ही सन्नाटा है। वह वापस आ रहे हैं।

अब वह दो नहीं चार हैं—चारों देर तक उन्हें खोजते हैं, कुएं में झांकते हैं।

तीसरे और चौथे की नज़रें टकराती हैं। पांचवां, छठा, उन दोनों की ओर देख रहे हैं।

"बात दरअसल यह है कि हम चार आदमी कुछ नहीं कर सकते" तीसरा उनसे संबोधित होता है।

"हमारे पास रस्सी तो है नहीं। बस दो आदमियों की ज़रूरत होगी। हममें से दो को नीचे उतरना होगा और बाकी चार बाहर रहेंगे। चौथा बात को मुकम्मल कर देता है।

पांचवां और छठा एक ज़बान होकर—"जो चीज बाहर लानी होगी काफ़ी भारी होगी ?"

वे चुप रहते हैं फिर तीसरा जैसे बात ख़त्म कर देता है, "सुना तो यही था कि सोने का वज़न ज़्यादा होता है।"

अब पांचवां और छठा दो विश्वसनीय आदमियों की तलाश में शहर की तरफ़ जा रहे हैं।

रात धीरे-धीरे बीत रही है।

"सुन रहे हो, कुएं में से चलते पानी की आवाज़ आ रही है जैसे दरिया बहता हो।"

"लेकिन कभी ऐसा देखा न सुना।"

"हां कभी नहीं।"

दोनों कुएं की मुंडेर से कान लगा लेते हैं।

"वह अभी रास्ते में होंगे।"

"हां अगर बहुत जल्दी भी पहुंचे तो सुबह।"

वह सीधे होकर आमने-सामने बैठ जाते हैं और एक-दूसरे की ओर देखते हैं—उनकी आंखों में सांप लहरिए लेता है।

जानकी बाई की अर्ज़ी

के. एल. रलिया राम रिटायर्ड सेक्रेट्री बहादुर म्युनिसिपल कमेटी लाहौर, आज फिर रात गए अपनी स्टडी में पुरानी अख़बारी कतरनों, बयानों और निजी संस्मरणों पर आधारित फाइल लिए बैठे थे। यह एक ऐसी दस्तावेज़ थी जिसे उन्होंने अपने घर में भी हमेशा अंडर लाक ऐंड की रखा था।

आज उन्हें सांस की तकलीफ़ न होने के बराबर थी। डाक्टर के अनुसार उनका ब्लड प्रेशर नार्मल था और शूगर टैस्ट की रिपोर्ट ए वन।

पिछले कई वर्षों में ऐसा कम ही हुआ लेकिन जब कभी ऐसा होता, उस रोज़ वे रात का खाना वक़्त से पहले खा लेते और बड़े रूम का रुख़ करते फिर देर तक करवट लिए बिस्तर पर पड़े रहते। जब बेगम घर का काम निमटाते हुए नौकरानी को अंतिम आदेश देकर कमरे में आतीं तो हमेशा धीरज से सिर्फ़ एक ही सवाल पूछतीं—"क्या सो गए ?" जवाब में वे चुपचाप पड़े रहते और जब वे गहरी नींद सो जातीं तो उठते और अपने स्टडी का रुख़ करते।

आज भी एक ऐसी ही रात थी। जब जानकी बाई की याद चारों ओर से उमड़ी पड़ती थी और उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें ? उस वक़्त कहां होगी वह ? किन हालात से गुज़र रही होगी ? उन्होंने सोचा।

स्टडी की मेज़ पर उनके सामने झुके हुए टेबल लैम्प की दूधिया रोशनी में वर्षों पुरानी अख़बारी कतरनों, बयानों और संस्मरणों पर आधारित फाइल धरी थी। वे देर तक उसे उलट-पलट कर देखते रहे। फिर कांपते हुए हाथों से उसका रिबन खोला। फाइल के शुरू में अख़बारों की कतरनें थीं जिनमें अंजुमन-ए-इस्लाहे-ए-बदकारां लाहौर की ओर से जारी किए गए बयानों के अतिरिक्त शराब विक्रेता इलाही बख़्श कंजर के विरुद्ध लाला करमचंद पुरी के मशहूर मुक़द्दमे का विवरण मौजूद था। 1921 के दैनिक सियासत का संपादकीय नोट कुछ यों था—

हद अफ़सोस कि म्युनिसिपल कमेटी लाहौर ने 1913 में करार दाद नम्बर 472

के अंर्गत हीरामंडी को वर्जित क्षेत्र करार देकर कूचा शहबाज़ खां को इस आदेश से मुक्त कर दिया। यही कारण है कि शहर लाहौर की तमाम तवायफें कूचा शहबाज़ खां और उसके इर्द-गिर्द के इलाके में फैल गईं। अब क्या ही अच्छा हो कि कूचा शहबाज़ खां और उसके समीपवर्ती क्षेत्र को भी इस गंदगी से साफ़ कर दिया जाए।

रिटायर्ड साहब बहादुर ने इस संपादकीय नोट को पढ़ने के बाद सोचा कि क्या हलचल का ज़माना था 1921 का जब मुहम्मद अली जौहर का खिलाफ़त आंदोलन ज़ोरों पर था, गांधीजी ने आंदोलन का बढ़-चढ़कर साथ दिया था। मुसलमानों ने गऊ हत्या से हाथ रोक लिया था। खालिक़ दीना हाला कराची में जौहर पर विद्रोह का मुक़द्दमा चला था और उन्हें दो साल सख्त कैद हो गई थी लेकिन इस हंगामे के अंदर एक और हंगामा पल रहा था, लाहौर शहर के वेश्या बाज़ार की एक क्लासिकी दास्तान। लेकिन हुआ सब कुछ अकस्मात ही।

उन दिनों म्युनिसिपल कमेटी लाहौर के उच्च अधिकारियों के नाम एक प्रार्थना पत्र प्राप्त हुआ। हिन्दू, मुसलमान और सिखों के सैकड़ों हस्ताक्षरों से युक्त इस प्रार्थना पत्र में विनती की गई थी कि लाहौर की विभिन्न आबादियों में स्थापित चकले समाप्त किए जाएं और पेशावर औरतों को शरीफ़ आबादियों से निकाल बाहर किया जाए। इसके बाद तो कमेटी के नाम इस प्रकार के प्रार्थना पत्रों का जैसे तांता बंध गया। तब भी कमेटी इन प्रार्थना पत्रों का नोटिस न लेती पर एक मुसीबत और आन पड़ी। 'अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-बदकारां' के स्वयं सेवकों ने पेशावर औरतों के कोठों के सामने खड़े होकर दुराचार के विरुद्ध भाषण शुरू कर दिए जिसके जवाब में कोठों पर से भाषण कर्ताओं पर कूड़ा करकट फेंका जाने लगा। अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-बदकारां के सक्रिय कर्यकर्ता पहलवान अमीर बख़्श के साथ भाषण के दौरान ऐसी ही घटना घटी तो उनके साथियों और कोठे के तमाशबीनों के बीच हाथापाई शुरू हो गई। मामला बढ़ा तो शांति भंग होने के खतरे को ध्यान में रखते हुए म्यूनिसिपल कमेटी लाहौर की जनरल बाडी की मीटिंग आयोजित हुई। नवम्बर 1921 में ज़ेर दफ़ा 218 म्युनिसिपल ऐक्ट 3 हेतु 1911 के अधीन अनारकली (कमर्शियल बैंक के पीछे), धोबी मंडी (पुरानी अनारकली के पीछे), देहली दरवाज़ा, लौहारी मंडी, लुण्डा बाज़ार से सराय सुलतान तक, शालीमार रोड, फोर्ट रोड और मोती बाज़ार साधारण पेशावर रंडियों के लिए वर्जित क्षेत्र करार दिए गए। अगले मैक्लिगन प्रेस से प्रकाशित यह महत्वपूर्ण फैसला अवामी इश्तिहार के रूप में शहर लाहौर की दीवारों पर चिपकाया जा चुका था।

इस इश्तिहार के जारी होने के चंद रोज़ बाद तमाम तवायफों और काठी खानों के मालिकों को अलग-अलग नोटिस मिलने शुरू हो गए। इस सिलसिले के एक नोटिस की कार्बन कापी फाइल में मौजूद थी—

फार्म न. 1

अज़ सरिश्ता सेक्रेट्री म्यूनिसिपल कमेटी लाहौर बनाम नाज़ो बिन्त नामालूम साकिम और लौहार मोहल्ला धोबी मंडी न. 701

चूंकि म्युनिसिपल कमेटी लाहौर ने इस रकबे (क्षेत्रफल) हब्ब (अन) शुभरी, रिहाइशी से ज़ेर दफ़ा 152 म्युनिसिपल कमेटी एक्ट नं. 1913 काठी खाना या चकला रखने या आम पेशा रंडी की रिहाइश के लिए ममनूआ (वर्जित) करार दिया है पस (अतः) आपको ब-जरिअः (द्वारा) इतिलाअ्-नामा हज़ा मुत्तला (सूचित) किया जाता है कि अर्सा एक हफ़्ते में शिकायत मज़कूर (कथित) दूर कर देवें। यानी मज़कूरा वाला (उपर्युक्त) रकबा मनूआ (वर्जित क्षेत्र) में से अपनी रिहाइश छोड़ दो वर्ना आपके खिलाफ़ कार्रवाई की जायेगी।

अलमरकूम...माह...1921

नोट--

अगर आपको कोई एतिराज़ निस्बत (संबंधित) शिकायत-ए-मज़कूरा (उपयुक्त शिकायत) हो तो हमारे पास अलाहिदः तहरीर जवाब भेज देवें। पुश्त नोटिस हज़ा (इस नोटिस के पीछे) पर तहरीर किया हुआ उज्र (आपत्ति) काबिल-ए-ग़ौर न होगा।

साहब बहादुर को अच्छी तरह याद था कि कमेटी के इस कदम के विरुद्ध सबसे पहले धोबी मंडी (अनारकली के पीछे) की तवायफ़ों ने शिकायत की थी और म्युनिसिपल कमेटी के अलावा डिप्टी कमिश्नर, कमिश्नर और गवर्नर पंजाब को प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किए गए थे। कागज़ों को उलटने-पलटने से 21 नवम्बर 1921 को लाला नत्थू लाल वकील की मार्फ़त लिखी गई एक अर्ज़ी सामने आ गई जिसमें लिखा था :

हम वर्षों से इस मोहल्ले में रह रही हैं और यहां के लोगों को हमसे कभी कोई शिकायत पैदा नहीं हुई है। यह मोहल्ला, घरानों से बहुत दूर है और सिखों के समय से तवायफों के लिए निश्चित चला आ रहा है। आज से छः-सात वर्ष पहले शराब विक्रेता इलाही बख़्श कंजर के विरुद्ध लाला करमचंद पुरी के दायर किए गए मुकद्दमे में डिप्टी कमिश्नर ने ज़ाती निरीक्षण के बाद यह फैसला दिया था कि चकला और शराबख़ाना जहां हैं वहीं रहने चाहिए। लेकिन यहां पांच-छः आदमी ऐसे हैं जो ज़ाती कारणों की बिना पर हमें परेशान करने की तर्कीबें सोचते रहते हैं। हद यह है कि वे इस कोठे के रहने वाले भी नहीं हैं। ये लोग बड़े मामूली क़िस्म के हैं और ख़िलाफ़त आंदोलन के कार्यकर्ता हैं। उन्होंने प्रार्थियों से ख़िलाफ़त कमेटी के लिए रुपया हासिल करने की कोशिश की लेकिन इसमें असफलता के बाद उन्होंने म्युनिसिपल कमेटी को हमारे विरुद्ध प्रार्थना पत्र देने शुरू कर दिए हैं और उन लोगों की गलत रहनुमाई में कमेटी ने हमें मोहल्ला खाली करने के नोटिस जारी कर दिए हैं लेकिन कोई वैकल्पिक जगह प्रस्तावित नहीं की.......आपकी यह प्रार्थी उम्र के उस स्थान पर जा पहुंची हैं कि लम्बे समय तक यह पेशा करने के बाद अब कोई उनसे

ब्याह करने को तैयार नहीं और न उन्हें किसी घर में नौकरी मिल सकती है। बड़ी उम्र के कारण वे अब और कोई नया काम भी नहीं कर सकतीं। इन्हीं कारणों की बिना पर उन्हें किसी दूसरी जगह किराए के मकान भी नहीं मिल सकते।

इन सब कारणों और हालात और वाकिआत के बावजूद हम इस खुश्क और निराशा की घायल ज़िंदगी में हज़ारों इंसानों के लिए आशा और संतोष की शमअ़ जलाए बैठी हैं।

हम जो बहुत ग़रीब हैं और आए दिन के जुर्मानों ने हमें निर्धनता की अंतिम सीमाओं तक पहुंचा दिया है आपसे दया की प्रार्थना करती हैं।

अनेकों नाम और अंगूठों के निशान लेकिन होना क्या था, धोबी मंडी पुरानी अनारकली की शरीर बेचने वाली और गाने वाली बीरो, करमनिशां, अफ़ज़ला, सरदारो, बदरो, पारो, तेजो, मालो, ज़ेबो, राखी, अज़ीज़ो और सरदार पठानी वगैरह की यह अर्ज़ी सारंगी के टूटे हुए तार से भी ज़्यादा अप्रभावकारी प्रमाणित हुई और उन्हें उनके घरों से निकाल बाहर किया। यही हाल लौहारी मंडी, देहली दरवाज़ा, लुण्डा बाज़ार से सराय सुलतान शालीमार रोड, फोर्ट रोड और मोती बाज़ार की तवायफ़ों का हुआ।

जिस्म फरोशी के आरोप की बुनियाद पर कमेटी की ओर से जिन तवायफ़ों को नोटिस दिया गया था उनकी सही संख्या तो रिटायर्ड साहब बहादुर को याद न थी और न कहीं फाइल में दर्ज थी अलबत्ता इतना याद था कि छः सौ तवायफ़ें ऐसी थीं जिन पर नोटिस की तामील न करने की सूरत में मुकदमे चलाए गए और उन्हें पांच रुपए से लेकर पचास रुपए तक के जुर्माने की सजा हुई।

फ़ाइल में अगले पृष्ठ पर साहब बहादुर के अपने हाथ से लिखे संस्मरण दर्ज थे। दिन प्रतिदिन मद्धम पड़ती हुई नीली रोशनाई से उन्होंने कभी गए वक़्तों में लिखा था—"म्युनिसिपल कमेटी के एक कौंसलर मुहम्मद घसीटा ने राय अभिव्यक्त की है कि मोती बाज़ार और दूसरी जगहों से जो पेशावर औरतें निकलकर गुज़र शहबाज़ खां (अंदरूनी टकसाली दरवाज़ा) में आबाद हो गई हैं, उन्हें वहां से निकाल दिया जाए और यहां पहले से रहने वाली मालिक मकान तवायफ़ों से कहा जाए कि वे खिड़कियों के सामने पर्दे लटका दिया करें। धोबी मंडी की बाज़ पेशेवर औरतों ने पान सिगरेट की दुकानें खोल ली हैं और यह दुकानें दलाली के अड्डे बन गई हैं, उनका भी कोई इंतज़ाम करना ज़रूरी है।

ऐसे में चेतराम रोड की जानकी बाई की खिड़की का जालीदार पर्दा याद आया और पान बीड़ी सिगरेट की दुकान के बाहर खड़ा लाल रूमाल वाला दलाल, मोदा कंजर। वे देर तक सिर झुकाए बैठे रहे जैसे पुरानी यादों का सिलसिला था, जो चल निकला। उन्हें याद आया कि शीतकाल की वह एक सुंदर शाम थी जब शिक्षा से निवृत होने के बाद एक नौकरी की तलाश में कानपुर से लाहौर आया हुआ एक नौजवान रेलवे स्टेशन से साझे के तांगे में बैठकर भाटी दरवाज़े के सामने उतरा था

और भाटी से लौहारी तक की चहलकदमी करते-करते संज्ञाहीनता में टकसाली गेट की तरफ़ निकल लिया था। फिर घूमते-घूमते चेतराम रोड तक आया। उस वक्त चेतराम रोड के लैम्प पोस्ट रौशन हो चुके थे और चकला जोबन पर था। यों ही घूमते-घामते उसने सारे पर निगाह डाली। हीजड़ों की बैठकें, टखियाइयों वाली गली और डेरादारनियों का बाज़ार। एक गली में से गुजरते हुए करीब ही की बैठक से किसी गायिका ने तान लगाई—"तुम्हारे नैनों ने जादू किया।" तबले की थाप और सारंगी की संगत पर घुंघरू झनझना उठे तो वह तेज़ कदम उठाता "पुरी थिएटर" की ओर निकल गया।

अभी उसने "पुरी थिएटर" के बराबर वाले पान बीड़ी विक्रेता से खुशबू इलायची वाला पान बनवाया ही था कि गले में सुर्ख रूमाल उड़से एक दलाल ने उसे आ लिया—"बाऊ जी क्या रखा है यहां—आइए मेरे साथ।"

"लेकिन कहां ? मैं तो यों ही निकल आया इस तरफ़ बिना कुछ सोचे-समझे।"

"पहली बार ऐसा ही होता है साहब...चलिए तो..."

"लेकिन कहां ?"

'जहां मैं आपको ले जाऊंगा साहब। हीरा है हीरा—"

"नहीं भाई। मैं बहुत मामूली आदमी हूं और इस वक्त जेब का बहुत हलका।"

"कोई बात नहीं। आप आइए तो सही। देख तो लीजिए फैसला बाद में कीजिएगा।"

सुर्ख रूमाल वाला उसे "पुरी थिएटर" से उचककर एक बार फिर चेतराम रोड ले आया। फिर एकाएक उसने बायें हाथ की गली में मुड़ते हुए कहा—"आइए साहब आइए।" उसके पीछे एक मकान की सीढ़ियां चढ़ते हुए नौजवान कुछ हिचकिचाहट का शिकार था लेकिन सुर्ख रूमाल वाला तो जैसे छलावा था—छलावा। उसने झटपट बाहर का दरवाज़ा खोलकर आवाज़ लगाई—"जानकी—ओ जानकी... देख तो तेरे मिलने वाले आए हैं।"

सीढ़ियों पर खड़े-खड़े नौजवान ने अंदर निगाह की। सफ़ेद और काली टाइलों वाले साफ़-सुथरे दालान में ताखे पर लैम्प रौशन था। दालान की दायीं ओर दो जुड़वां कमरे थे और बायीं तरफ़ साफ़-सुथरा रसोईघर। सामने स्टोर के साथ एक उजला गुसलखाना था जिसके अधखुले दरवाज़े में एक सांवली-सी लड़की ने पल भर को बाहर की ओर झांका तो दोनों दालान में खड़े थे।

"जानकी ! तेरे मिलने वाले..." सुर्ख रूमाल ने बराबर का कमरा खोल दिया।

"आइए साहब आइए। आराम से बैठिए। चिंता की कोई बात नहीं। इस इलाके में मोटे कंजर की मर्ज़ी के बग़ैर हवा भी नहीं चलती। मैं यह गया और यह आया।" सुर्ख रूमाल वाले ने चुटकी बजाते हुए मुड़कर कमरे का दरवाज़ा भीड़ दिया।

अब नौजवान ने किसी कदर घबराहट के साथ कमरे का अवलोकन शुरू

किया। दायें हाथ की दीवार से जुड़ा तकिए वाला सुर्ख़ रोग़नी पलंग। एक छोटी तिपाई के साथ जोड़कर रखी हुई आराम कुर्सी। फ़र्श पर बिछी हुई दरी और दीवारों पर अभिनेता ई. बिलीमोरिया की फ़िल्मों के अनेक पोस्टर। परदेसी, बैरस्टर्ज वाइफ़, तूफ़ान मेल। अभी यह फ़ैसला नहीं कर पाया था कि कुर्सी पर बैठे या पलंग पर या चुपके से निकल ले कि दरवाज़ा खुला—

"आप बैठते क्यों नहीं। तशरीफ़ रखिए ना। मैं हूं जानकी। बस जैसी भी हूं आपके सामने हूं।"

नौजवान ने कुर्सी पर बैठते हुए जानकी की तरफ़ मुड़कर देखा। वह उस समय दालान की तरफ़ खुलने वाले दरवाज़े में थोड़ी झुककर तौलिए से झटक-झटक कर अपने सीने के रुख़ पर पड़े हुए गीले बाल ख़ुश्क कर रही थी।

"राम जाने आपको कैसी लड़की की तलाश है ? मैं न तो गोरी-चिट्टी हूं और न बनाव शृंगार ही आता है मुझे। मैं ऐसी ही हूं।" जानकी ने वार्तालाप का सिलसिला जारी रखा।

"यह मोदा कंजर कौन है ?"

"वही जो आपको यहां छोड़कर गया है। अब उसने पलटकर नहीं आना।"

"ए जानकी तेरा मेहमान रात रहेगा या एकआध बार बैठने को आया ?" बराबर वाले कमरे से छालिया कुतरते हुए सरौते की खट-खट के साथ किसी बुज़ुर्ग महिला की आवाज़ उभरी।

जवाब में जानकी चुप रही और उसी तरह तौलिए से गीले बाल ख़ुश्क करती रही।

"ए जानकी बोले क्यों नहीं ?'

तब भी जवाब में जानकी चुप रही।

"रात रहूंगा मैं" नौजवान ने रात गुज़ारने का निर्णय करते हुए ऊंची आवाज़ में जवाब दिया।

उसके बाद कमरे में चुप की चादर फैलती गई। नौजवान के चेहरे से घबराहट प्रकट थी। जानकी का मुंह दीवार में जड़े आईने की तरफ़ था और वह रुख़ बदल-बदल कर कंघी कर रही थी।

"जानकी इस कूचे में नया आदमी हूं। लाहौर में आज मेरी पहली रात है और जेब में बहुत ज़्यादा रुपए भी नहीं हैं।"

"रुपया-पैसा तो हाथ का मैल है बाबूजी। यह बात तो करो ही ना। मुझे ई. बिलीमोरिया पसंद है इस लिए आप भी पसंद हैं। कोई पिक्चर देखा उसका। 'तूफ़ान मेल' में डाक्टर बना था।"

"नहीं, अभी तक नहीं, सिर्फ़ नाम सुना है या तस्वीरें देखी हैं—सिनेमा के बाहर।"

"आप का कद-काठ चेहरा-मोहरा...मूंछें तो बिलकुल क्लिमोरिया जैसी हैं।"

"शायद।" नौजवान हलका-सा मुस्कराया।

जानकी ने दरवाज़ा भीड़ते हुए कमरे में रोशन लालटेन बुझा दी। उस वक़्त गली की ओर खुलने वाली खिड़की से चौरस्ते में रोशन लैम्प पोस्ट की हलकी ज़र्द रोशनी के साथ ठंडी हवा बारीक़ जालीदार पर्दे से छन-छनकर अंदर आ रही थी।

"तस्कीं को हम न रोएं जो ज़ौक-ए-नज़र मिले"

बराबर वाली किसी बैठक से डूबती-उभरती किसी गायिका की आवाज आ रही थी।

"कैसा है तुम्हारा घर ? मुझे नहीं दिखाओगी ?"

"मेरा घर ?" वह खिलखिला कर हंसी—"चलें अगर आप ऐसा समझते हैं तो यों ही सही। किसने रोका है आपको देखने से। आइए मेरे साथ।"

और वह जानकी के पीछे-पीछे चल पड़ा। बराबर वाले कमरे में अंधेरा था। स्टोर में एक मरियल-सा तबलची लालटेन की मद्धम-सी रोशनी में उकडूं बैठा जाने क्या कर रहा था। दालान से लोहे की गोल सीढ़ी सीधी छत को निकल जाती थी जिसके द्वारा वे दोनों छत पर चले गए। हलकी पुरवा में रेलिंग का सहारा लिए वे बहुत देर तक पुरी थिएटर से उठने वाली आवाज़ें सुनते और बादशाही मस्जिद के गगनचुंबी मीनारों का नज़ारा करते रहे। जब चेलराम रोड पर मुजरे की बैठकें उजड़ गईं और हर तरफ़ संपूर्ण खामोशी छा गई तो वे नीचे उतर आए।

अब कमरे में ठंडक बढ़ गई थी।

"खिड़की बंद कर दूं या खुली रहे ?" जानकी ने पलंग पर लेटते और अपने बराबर में उसके लिए जगह बनाते हुए कहा।

"बेशक खुली रहे।"

अगले दिन प्रातःकाल, उनके कमरे का दरवाज़ा एक छपाके के साथ खुला और हंसी-ठट्ठा करती नौजवान लड़कियों का झुंड का झुंड अंदर उमड़ आया। उन्होंने आते ही उन दोनों पर से रेशमी रज़ाई खींचकर दूर फेंक दी और हंसते-हंसते दोहरी हो गईं। जितनी देर में यह दोनों हड़बड़ाकर उठे और अपने ऊपर बिस्तर की चादर ली, उतनी देर में वे सारी की सारी कहकहे लगाती और एक-दूसरी के कूल्हों पर चुटकियां काटती नीचे दरी पर बैठ चुकी थीं।

फिर एक लड़की कहीं से हारमोनियम उठा लाई और दूसरी ने ढोलक संभाल ली। फिर वह सारी की सारी तालियां बजा-बजाकर शादी-ब्याह के गीत गाने लगीं। बहुत धमा-चौकड़ी मचाई उन्होंने और यह दोनों अपने ऊपर चादर ताने बस मुस्कराते रहे। उस वक्त तक जब कि मोदा कंजर हलवा-पूरी का नाश्ता थामे आन धमका।

"अरे यह क्या ? यह खटराग करना अपनी-अपनी नथ उतराई पर। चलो भागो यहां से। गश्तियां न हों तो—" मोदे ने लड़कियों को घुड़की दी तो वे उठकर

भाग खड़ी हुई। मोदे कंजर को अपने इनाम से मतलब था जो उसे मिल गया और वह निकल गया।

नाश्ते के बाद नौजवान ने भी वहां से निकलना था और उस वक़्त तक खूब दिन चढ़ आया था इसलिए जब वह नहा-धोकर जाने के लिए तैयार हुआ तो उसने कंघी करते हुए अपना बटुआ जानकी के हाथ में थमा दिया।

"चाहो तो सब के सब रख लो।"

"नहीं आप परदेसी हैं और बेरोज़गार भी। आप मुझे अच्छे लगे। मेरी एक प्रार्थना है कि मुझसे मिलते रहिएगा। जब अफ़सर बन जाएं ना तो जो जी में आए दीजिएगा या मैं खुद मांग लिया करूंगी लेकिन आज कुछ नहीं लूंगी।"

नौजवान ने बहुत चाहा कि जानकी अपना प्रतिदेय या इनाम ले ले लेकिन वह निरंतर इंकार करती रही। फिर वह वहां से निकल आया।

बेरोज़गारी के दिनों में वह सप्ताह-डेढ़ सप्ताह बाद जानकी से मिलने जाता रहा। उससे शादी-ब्याह के वादे भी किए जिसकी कदापि आवश्यकता न थी और जानकी हर बार उसके आगमन पर अपने ग्राहकों को यह कहकर टालती रही कि बीमार है सेवा के योग्य नहीं।"

साहब बहादुर को गए वक़्तों की चिलचिलाती दोपहर अब तक याद थी जब मोदे द्वारा ई. विलीमोरिया का संदेश मिलने पर सफ़ेद चादर में लिपटी लिपटाई जानकी बहाने से लेडी विलिंगडन हस्पताल चली आई थी और वहां से वे दोनों तांगे पर नूरजहां के मक़बरे की तरफ़ निकल गए थे।

उस रोज़ शाहदरा के ग्वालों की कच्ची आबादी में घूमते-फिरते उन दोनों को जिस किसी ने भी देखा, मियां-बीवी ही समझा। और उस आवारागर्दी के दौरान कितनी भूख लगी थी दोनों को...और हां, वह नेकदिल बुढ़िया जिसने लस्सी के साथ बासी रोटी से उनकी खातिर करते हुए पूछा था—

"कै दिन हुए शादी को ? कोई बच्चा-बच्ची ?"

तब जानकी किस तरह से लजाई थी। चादर के पल्लू में मुंह छुपाए और सिर झुकाए कितनी देर हंसती रही थी।

एक लम्बा सिलसिला था यादों का जिसका छोर कोई न था। जैसे तूफ़ान मेल धुआं उगलती चीखती चिंघाड़ती चली जा रही थी और उसकी छत ई. विलीमोरिया के हाथ से मिस सुलोचना का हाथ छुटा चाहता था।

हालात कुछ के कुछ होते चले गए। कुछ बस में भी तो नहीं था उन दिनों। उन्होंने सोचा अच्छी नौकरी मिल गई म्युनिसिपल कमेटी में तो सफ़ेद पेशी आड़े आई और जानकी की तरफ़ जाना नितांत छूट गया। यह बताए बिना कि नौकरी मिल गई। किस-किस से न पूछा होगा उसने।

यह सोचते हुए वे देर तक सिर निहोड़ाए बैठे रहे। फाइल का अगला पृष्ठ

पलटा तो उनके सामने उनके अपने हाथ का लिखा एक और संस्मरण आ गया—

सब हालात ठीक जा रहे थे कि अचानक 28 जनवरी 1922 की सुबह कौंसलर लाला अशनाक राय ने कमेटी में एक हंगामा खड़ा कर दिया। उसने मेरे रूबरू बताया कि अंदरूनी टकसाल में एक ऐसे मकान की निशानदेही की गई है जो लैण्ड एण्ड नाम से मशहूर है और जहां बाकायदा चकला स्थापित है जबकि इससे पूर्व यहां देखने में डेरादारनियां रह रही थीं। फिर लालाजी ने ज़ोर देकर कहा कि चूंकि यह मकान एक ऐसे रास्ते पर है जहां से शरीफ़ घरानों की महिलाएं डेरा साहब के दर्शन और रावी पर स्नान को जाती हैं इसलिए इस मकान को तुरंत संदिग्ध चाल-चलन वाली औरतों से खाली करवाया जाए। अफसोस कि कमेटी ने एक अन्य प्रस्ताव द्वारा यह फैसला कर लिया कि अंदरूनी टकसाल के तमाम बाज़ार और मोहल्ले, कूचा शहबाज़ खां समेत तवायफ़ों से खाली करवा लिए जाएं। इस फैसले के तहत मैंने यहां की तवायफ़ों को नोटिस जारी कर दिए हैं और एक आम सूचना भी जारी कर दी है जिसे बाज़ारों में चिपकवा दिया गया—रलिया राम बकलम खुद।

इस संस्मरण के साथ आम सूचना की कापी संलग्न थी।

हसब रेज़ोल्यूशन 196 जनरल कमेटी मुंअ़किदः (आयोजित) 3 अगस्त 1922 इतिला नामा-ए-हजा ज़ेर दफ़ा 152 (1) अलफ़ म्युनिसिपल कमेटी लाहौर ने रकबाजात मुंदरिजः ज़ैल में आम पेशावर रंडियों और पेशा करने वाली औरतों के रहने और काठी खानों को जारी रखने की मनाही कर दी है जो आम रंडी या पेशावर औरत इस इलाक़ा मम्नूअः (वर्जित) में रिहाएश रखेगी या जो शख़्स इस इलाक़े में काठी खाना जारी करेगा उसके साथ दफ़ा 152 (2) के तहत कानूनी सलूक किया जावेगा। इन रक़बाजात ममनूअः (वर्जित क्षेत्रों) में इन मकानों में आम रंडियों की रिहाएश व काठीख़ाना जारी रखना ममनूअ (वर्जित) है जो शारेआम (जनमार्ग) पर वाके (स्थित) है।

रक़बाजात ममनूअः (वर्जित क्षेत्र) (1) कब्र नौगज़ा से टकसाली दरवाज़ा तक (2) पुरी थिएटर से चौरस्ता बाज़ार अज अब्दुल लतीफ़ वाके टिब्बी बाज़ार तक (3) कब्र नौगज़ा से किला की तरफ़ तक बम (समेत) मकान "लैण्ड एण्ड" 25 अगस्त 1922 ई.।

हस्ताक्षर

के. एल. रलिया राम एम. एल. सी.

सेक्रेट्री साहब बहादुर म्युनिसिपल कमेटी लाहौर

इस सूचना पत्र के निचले कोने में मद्धम नीली रोशनाई के साथ लिखा था—"लेकिन मैंने जानकी को बेदख़ली का यह नोटिस जारी होने से बचा लिया। रलिया राम।"

फाइल में म्युनिसिपल कमेटी के इस विशाल अभियान से संबद्ध उस वक़्त

के विभिन्न अख़बारों की समीक्षाओं के साथ हबीब जलालपुरी के अख़बार सियासत बलदिय लाहौर और संपादकीय लेख बलदिय लाहौर और स्याहकारी (लाहौर नगरपालिका के कार्य) शीर्षक से संलग्न था जिस पर साहब बहादुर ने सरसरी नज़र डाली

"हमें मालूम हुआ है कि हीरामंडी और टिब्बी लाहौर की बाज़ारी और व्यभिचारिणी औरतें इस सुलूक के ख़िलाफ़ विरोध की आवाज़ बुलंद करने वाली हैं...इसमें शक नहीं कि मौजूदा अंग्रेज़ी कानून खुलेआम सौंदर्य विक्रेता औरतों के कोठों पर ऐसे लज्जाजनक कार्यों को करने की अनुमति देता है जो मानवता के लिए लज्जा और शर्म का कारण हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या लाहौर के हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों का धर्म और स्वाभिमान और लज्जा का कानून उन्हें इस कार्य की अनुमति देता है। आज स्वराज्य और खिलाफ़त के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्र के ज़िम्मेदार और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को एक-एक पैसे की ज़रूरत है लेकिन ख़ुदा ही जानता है कि रात के आठ बजे से दो बजे तक ख़ास लाहौर में हर रोज़ कितने हज़ार रुपया सौंदर्य की अपवित्र और अख़लाक़ को बिगाड़ने वाली बलि वेदी पर भेंट के तौर पर चढ़ाया जाता है। शाबाश है सौ-सौ शाबाश है उन नौजवान स्वयं सेवकों को जो मार्गभ्रष्टों को पथभ्रष्टता से बचाने के लिए शहर के उन स्थानों में बिना पारिश्रमिक के चौकी पहरा का काम अंजाम देते हैं और इस प्रकार अपने धर्म, अपने देश, अपने समुदाय की सच्ची सेवा करते हैं। लाहौर वासियों को "अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-बदकारां" की सेवा का सच्चे दिल से इकरार करना चाहिए।

यह अख़बारी कतरन देखकर वे एकाएक उठ खड़े हुए और बिना कोई आहट पैदा किए नंगे पांव अपने बेडरूम की तरफ़ निकल गए, यह इत्मीनान कर लेने को कि कहीं बेगम जाग तो नहीं रहीं। वापसी में वे किचन से भी होते हुए आए केवल यह सोचकर कि कई बार सिंक की टूटी हलकी-सी खुली रह जाती है और रह-रहकर टपकने वाला पानी का कतरा नींद में ख़लल पैदा करता है।

यों हर तरह का इत्मीनान कर लेने के बाद वे एक बार फिर स्टडी में आ बैठे।

ऐसे में साहब बहादुर को याद आया कि सितम्बर 1922 के आख़िर में कूचा शहबाज़ ख़ां, बाज़ार शेख़ूपुरिया, टिब्बी और उसके आस-पास के इलाके में आबाद तवायफ़ों को जब बेदख़ली के नोटिस प्राप्त हुए थे तो उन्होंने भी "अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-बदकारां" के जवाब में स्थानीय नागरिकों के हस्ताक्षरों ज्ञापन भिजवाए थे। इन ज्ञापनों के हस्ताक्षरकर्ताओं में ज़्यादातर दुकानदार थे। चंद प्रोफेसरों, एक मस्जिद के इमाम और एक दैनिक पत्र के संपादक के हस्ताक्षर भी नज़र से गुज़रे।

अंदरूनी टकसाल की तवायफ़ों ने, कमेटी की ओर से हर एक को अलग-अलग नोटिस प्राप्त होने पर जो व्यक्तिगत रूप से जवाब भिजवाए उनकी बीसियों नकलें

फ़ाइल में मौजूद थीं। हर प्रार्थनापत्र में एक शोकपूर्ण गाथा थी जिसमें जिस्म फरोश औरतों का दिल धड़क रहा था।

बाज़ार शेख़ूपुरिया मकान नं. 1120 की निवासी तवायफ साहब जान ने 17 जनवरी 1923 ई. को सेक्रेट्री म्युनिसिपल कमेटी के नाम नोटिस के जवाब में लिखा था :

आलीजाह ! प्रार्थी हमेशा से पेशावर औरत नहीं तवायफ़ है गाने-बजाने का काम करती थी। अगर किसी रईस की नौकरी मिली तो कर ली वर्ना ख़ैर। अल्लाह तआला ने प्रार्थी को एक लड़का दिया है जो दयाल सिंह स्कूल में पांचवीं कक्षा में पढ़ता है चूंकि प्रार्थी बूढ़ी हो गई है इसलिए गाना-बजाना और नौकरी इत्यादि छोड़ दी है। प्रार्थी पर रहम किया जाए।

अंदरूनी टकसाल बाज़ार शेख़ूपुरिया की ईदो ने जवाब में लिखा था—

मैंने कई वर्ष से पेशा और गाना-बजाना छोड़ दिया है। कक्के ज़ई कौम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से निकाह पढ़ा लिया था मगर तीन वर्ष की मुद्दत से प्रार्थी को ख़ूक जारी हो गया है जिस की वजह से पति ने तलाक़ दे दी है। प्रार्थी अब तक इस बीमारी से पीड़ित है। अगर हुज़ूर को शक हो तो प्रार्थी का मैडिकल निरीक्षण कराया जाए। बेहतर होगा यदि हुज़ूर ख़ुद निरीक्षण करें और उसके बाद मेरे ख़िलाफ़ नोटिस वापस लिया जाए।

यह पढ़कर साहब बहादुर को याद आया कि मोती बाज़ार की वृद्धावस्था की तवायफ़ दारो ने कमेटी में आकर उनके सम्मुख फ़रियाद की थी कि उसे स्थानांतरण में कोई आपत्ति नहीं लेकिन मोती बाज़ार से उसका सामान लादने के लिए कोई तांगा, रेढ़े वाला तैयार नहीं है। बच्चे उस पर आवाज़ें कसते हैं और बड़े-बूढ़े उसे देखकर नाक पर रूमाल रख लेते हैं।

फ़ाइल में एक प्रार्थनापत्र के साथ नत्थी एक संस्मरण ऐसा भी मिला जिसमें सेक्रेट्री बहादुर की अपनी हैंडराइटिंग में लिखा था—

अंदरूनी टकसाल के विभिन्न मुहल्लों की तवायफों ने कमेटी के इस कदम के ख़िलाफ़ शिकायत भी शुरू कर रखी है। समझ में नहीं आता कि जानकी को बेदख़ली के नोटिस से कब तक बचा पाऊंगा। अजीब मुश्किल में हूं।

रलिया राम बकलम ख़ुद

अंदरूनी टकसाल गेट की तवायफ़ों की तरफ़ से म्युनिसिपल कमेटी, डिप्टी कमिश्नर, कमिश्नर और गवर्नर पंजाब के सामने प्रस्तुत किए गए एक प्रार्थनापत्र की नक़्ल पर सुर्ख़ टैग लगा हुआ था। साहब बहादुर ने उसे पढ़ना शुरू किया।

हम लोग यहां मुग़ल शासन के समय से रह रहे हैं और इस लम्बे काल में किसी भी शासक ने हमें परेशान नहीं किया। यहां तक कि सिखों के राज में भी हम सुरक्षित रहे।

अंग्रेज सरकार का शासन काल वह है जिस में शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। इतिहास बताता है कि हम लोग शादी-ब्याह के पर्वों में भी बुलाए जाते रहे। राजों, महाराजों, रईसों और महाजनों ने हमें अपनी खुशी के अवसर पर बुलाया और हमने वहां गाने और नाच की महफिलों की रंगीनी को दूना किया।

हाल ही में विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जो दरबार हुआ, उसमें भी हमें सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रिंस आफ वेल्ज़ के आगमन के अवसर पर उनके सामने दिल्ली में हमने गाने और नृत्य का शानदार प्रदर्शन किया जो मुद्दतों याद रहेगा।

हम लोग अंग्रेज़ी राज में भी दुराचारी और समाज के लिए खतरनाक खयाल नहीं किए गए थे। लेकिन अब कुछ समय से जबकि खिलाफ़त आंदोलन, कांग्रेस कमेटी और इस प्रकार के आंदोलन शुरू हुए हैं, हमें धिक्कार का निशाना बनाया जा रहा है। गलियों और बाज़ारों में बड़े जोशीले गीत गाए जा रहे हैं। जबकि गीत राजनैतिक और सरकार की अवज्ञा का प्रतिबिम्ब नहीं हैं हम केवल संगीत कला के उपासक और उसके संरक्षक हैं।

हमारे विरोधी, कमेटी के सदस्य कांग्रेस या खिलाफत से संबंध रखते हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप यूरोपियन अफ़सरों से युक्त जांच पड़ताल कमेटी बनाएं जो हमारे हालात का निरीक्षण करे। हम सरकार के वफ़ादार और शांतिप्रिय शहरी हैं इसलिए हमें पहले की तरह तमाम संरक्षण प्रदान होने चाहिए।

दर कूए-नेक नामी मारा गुज़र न दानद।
गर तू नमी पसंदी, तग़य्युद कुन कज़ा रा।।

इस प्रार्थना पत्र पर अनेक तवायफ़ों के हस्ताक्षर और अंगूठों के निशान लगे हुए थे और सबसे आखिर में प्रार्थनापत्र के निचले कोने पर बिलकुल अलग करके एक अंगूठे के नीचे ब्रेकेट में लिखा था—''जानकी बाई''

इस प्रार्थना पत्र पर जानकी का नाम देखकर रलिया राम वर्षों से सख्त हैरान थे कि उसे तो बेदखली का नोटिस जारी ही नहीं हुआ था फिर उसने यह हस्ताक्षर क्यों किए ? साहब बहादुर ने सोचा शायद पूर्वोपाय के तौर पर उसने ऐसा किया हो या शायद अपनी हमपेशा बिरादरी को रिआयत दिलाने की खातिर। अगर यह दूसरी बात थी तो निसंदेह उसे एक मान था पुराने संबंध की बुनियाद पर।

रलिया राम को याद आया कि जिस रोज़ यह प्रार्थना पत्र कमेटी में पहुंचा था तो उसी रोज़ चपरासी ने सूचना दी कि शाही मुहल्ले से मोदा कंजर भेंट करना चाहता है। दफ़्तर में बुलाने पर उसने कहा था कि हुजूर चेतराम रोड की जानकी बाई की एक प्रार्थना है। मुझे विस्तार तो उसने नहीं बताया बस इतना कहा है कि हुजूर का इकबाल बुलंद रहे। कई साल पहले एक प्रार्थना की थी ई. बिलीमोरिया के हुजूर में मगर अभी तक उसकी सुनवाई नहीं हुई। अगर कृपा दृष्टि करें तो आपके लिए, आपकी बेगम साहबा और बच्चों के लिए शुभचिंतक रहूंगी। हुजूर वह खुद

कमेटी में हाज़िर नहीं हो सकती, बीमार है।''

मोदे की बात सुनकर जवाब में रलिया राम ने टेबल पर रखे प्रार्थना पत्र पर से नज़रें उठाए बग़ैर एक लम्बी ''हूं'' की थी और बस। मोदा कुछ देर हाथ बांधे खड़ा रहा और उसके बाद फ़र्शी सलाम करते हुए पलट गया था।

जानकी बाई के एक प्रार्थना पत्र ने कहीं का नहीं रखा। रलिया राम...साहब बहादुर ने खेद में दोनों हाथ मले। फिर उन्होंने फाइल बंद कर दी। उन्हें अच्छी तरह याद था कि कमिश्नर लाहौर की अदालत में बाज़ार टिब्बी की अल्लाह जवाई और बुद्धाई ने जो अपील 7 अक्तूबर 1922 ई. को दायर की थी और लुंडा बाज़ार की छोटी जान और जानो इत्यादि क़ी अपील 19 जनवरी 1923 को कमिश्नर की अदालत से रद्द हुई। अलबत्ता हाईकोर्ट में दायर की गई अपील पर यह फ़ैसला हुआ कि तवायफ़ें सिर्फ़ कूचा शहबाज़ खां और बाज़ार शेखूपुरिया में रह सकती हैं।

यह सब सोचते करते उस रोज़ भी वही कुछ हुआ जो वर्षों से होता आया था। उस रोज भी उनका जी चाहा कि उधर जाएं, हो ही आएं। शायद कोई पता निशानी मिल ही जाए। एक भ्रमात्मक-सी आशा थी जो हर बार यों अचानक विश्वास में ढलने लगती कि हो न हो अब जानकी बाई का खोज मिल ही जाएगा। यह ख़याल आना था कि रलिया राम कुर्सी से उठ खड़े हुए। यह सोचे बिना कि अब जवानी का कस बल नहीं रहा और दूसरे हार्ट अटैक के बाद चिकित्सक ने ओवर एग्ज़र्शन से बचने का परामर्श दिया था।

बैडरूम में बेगम को गहरी नींद सोता छोड़कर बाथ रूम तक गए खूंटी पर झूलती पतलून पहनी और बरामदे में से अपनी छड़ी उठाकर आंगन में निकल आए। आज नियमविरुद्ध केवल यही बात थी कि उन्हें अपनी स्टडी की टेबल पर रखी फाइल अलमारी में संभालकर रखना याद न रहा।

रात का दूसरा पहर होगा जब उन्होंने भारी लोहे के गेट की जंज़ीर सावधानी से निकाली कि कहीं ऐसा न हो कि बेगम जाग जाए। फिर घर से निकलकर भारी छपके के सहारे उन्होंने किसी तरह गेट को अंदर से बंद भी कर दिया। उस वक़्त गली में कोई नहीं था और इस बात का विश्वास-सा था कि घर से निकलते और सड़क तक आते उन्हें किसी ने नहीं देखा।

बेडन रोड के पिछवाड़े से माल तक आते-आते उन्होंने छड़ी के सहारे अपनी चाल को एक हद तक संतुलित कर लिया था। उस वक़्त उन्हें देखकर यों महसूस होता था जैसे समय के एहसास से बेख़बर कोई बुद्धिविकारी बुड्ढा सुबह की सैर को निकल खड़ा हुआ है। वाई. एम. सी. ए. भवन की ऊपरी मंज़िल की एक अधखुली खिड़की के साथ लगकर खड़ी एक अंग्रेज़ लड़की ने दोनों बाजू पीछे की ओर मोड़ते हुए अपने ब्रेज़ियर की नाट बांधी और माल की तरफ़ झुककर नीचे देखते हुए हलकी-सी मुस्कान के साथ कमरे की लाइट आफ़ कर दी। उस समय वे अपनी धुन में

थे और नीला गुम्बद को निकल जाने वाला मोड़ मुड़ चुके थे।

अनारकली बाज़ार तक आते-आते मयो हस्पताल की तरफ़ निकल जाने वाली एक तेज़ गति एम्बुलेंस गाड़ी के सिवा उनके ध्यान का केन्द्र कोई वस्तु नहीं रही। एम्बुलेंस के हूटर की आवाज़ सुनकर वे क्षणभर को रुके थे और सुर्ख़ जलती-बुझती लाइट को दूर अंधेरे में लुप्त होते देखते रहे, फिर आगे बढ़ आए। ऊंघते हुए अनारकली बाज़ार के एक थड़े पर जागते हुए चौकीदारों ने यों ही समय काटने की ख़ातिर छेड़ी गई आपस की गपशप को क्षण भर के लिए रोका, एक नज़र भरकर उनकी तरफ़ देखा और फिर आपस में उलझ गए।

इधर वे अपने आपमें मग्न चले जा रहे थे टिक, टिक, टिक...धीरज से हर उठते हुए क़दम के साथ सड़क पर छड़ी टेकते हुए। फिर वे शाह आलमी गेट की तरफ़ सीधा निकलने की बजाय बायें हाथ की गली मुड़ गए। अब वे बुरी तरह हांफ रहे थे और "नया इदारा" के बाज़ू में रखे हुए सीमेंट के बैंच पर ज़रा सुस्ताने की ख़ातिर बैठते हुए उन्होंने सामने निगाह की थी।

सर्कुलर रोड पर भाटी दरवाज़े के सामने अर्द्ध-अंधेरे में दो तांगे उस समय भी शाह आलमी के रुख़ पर जुते खड़े थे और कोचवान सवारियों के लिए आवाज़ लगा रहे थे।

"भई हद हो गई। कहां से मिलेगी तुम्हें इस वक़्त सवारी। जाओ भई अपने घर जाओ। बहुत रात हो गई।" वे बड़बड़ाए।

यही जगह थी शायद। निसंदेह यही जगह थी। लेकिन यहां सीमेंट की बैंच नहीं थी उन दिनों। क्या अच्छा वक़्त था। कितना बनाव और बिगाड़ आया इस ज़िंदगी में। कुछ के कुछ हो गए हालात। नौकरी और नौकरी के दौरान मिलने वाली उन्नतियां। शादी बच्चे घरदारी के उलझेड़े, आज़ादी, बंटवारे का हंगामा और सेवा निवृति। पता ही नहीं चला यह सब इतनी जल्दी कैसे हो गया। कितना लम्बा सफ़र था जो निमट गया। सब गुज़रा हुआ। बस रह गई यह हूक जो कहीं अंदर से उठती है और चला आता हूं यहां तक। अरे जानकी को बताया तो होता कि मिल गई नौकरी। कह दिया होता साफ़-साफ़ कि अब मैं इज़्ज़तदार बाबू हूं। नहीं आ सकता तुम्हारी तरफ़...पर यह चेतराम तक चंद क़दम की दूरी तै नहीं कर पाया, उन्होंने सोचा।

"बुज़ुर्गो ख़ैरियत तो है ? कहां जाना है आपने ?" एक राहगीर ने भाटी की तरफ़ जाते-जाते रुककर पूछा

"मैंने जाना तो था आगे लेकिन आज बहुत थक गया हूं। सोचता हूं फिर किसी दिन चला जाऊंगा।"

"बाबाजी जाना है तो जाना है। इसमें आज कल क्या। मैं आपके साथ हूं। मुझे बताइए। मैं छोड़े देता हूं आपको।"

"घर पर नहीं जा पाया इन चालीस वर्षों में।"

"कहीं बाहर थे कि नहीं जा पाए ?"

"नहीं, नहीं, लाहौर ही में था। बस सोचते करते रह गया। अब हिम्मत नहीं पड़ रही।"

"बाबाजी ! इसमें ऐसी हिम्मत की क्या ज़रूरत है। मैं तांगा करवाए लेता हूं। पर जाना कहां है आपने ?"

"चेतराम रोड तक।"

"अरे वो तो करीब ही है। और है भी मेरे रास्ते में। मैं आपको चेतराम पहुंचाकर निकल जाऊंगा, बादशाही मस्जिद की तरफ़। यों भी मैं फ़ज्र (प्रातःकाल) की नमाज़ अक्सर वहीं पढ़ लेता हूं।"

"अच्छा तो चलो। आज ले ही चलो।" वे बैंच से उठ खड़े हुए।

तांगा दाता साहब के सामने से निकलकर रावी रोड पर हो लिया। सड़क सुनसान थी और दोनों तरफ़ गहरा अंधेरा। वे अभी चेतराम रोड का मोड़ मुड़े ही थे कि साहब बहादुर ने पिछली सीट से हाथ बढ़ाकर कोचवान को किराया थमाते हुए कहा—

"तांगा रोक लो मियां, हमें यहीं उतरना है।" तांगा रुका तो वे दोनों नीचे उतर आए।

"पर बाबाजी अभी अंधेरा है और आपकी तबीयत भी ठीक नहीं लग रही। तांगे पर आगे तक चले चलते।"

"नहीं, बस।"

"अच्छा फर्माइए किससे मिलना है ? मैं मालूम किए देता हूं।"

"कोई था, क्या बताऊं ? बस यहीं कहीं एक गली थी। बस अब आप ही ढूंढ़ लूंगा मैं।"

"अंधेरे में कहीं ठोकर लग गई तो...?"

"नहीं, बस...आपका बहुत शुक्रिया...रामजी खुश रखे।"

"चलिए आपकी मर्ज़ी।"

अभी फ़ज्र की अज़ानें नहीं हुई थीं। तांगा भाटी की तरफ़ पलट गया था और नेक दिल मार्गदर्शक आगे बढ़ गया था।

टिक, टिक, टिक...वे सड़क पर छड़ी टेकते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे कि एकाएक ठिठक कर एक जगह ठहर गए।

"अरे यह वही गली तो नहीं ?" वे बड़बड़ाए।

चेतराम रोड की एक अंधेरी गली उनके सामने थी, अंधेरी और वीरान। उन्होंने अपनी धुंधलाई हुई आंखों पर से ऐनक उतार कर रूमाल से साफ़ की। निसंदेह यह वही जगह थी जहां वे कभी गए वक्तों में सुर्ख रूमाल वाले मोदे के साथ चले आए

थे। सामने वही चौखट थे। लाल सीमेंट के चबूतरे के बीच में से ऊपर को उठती हुई वही सीढ़ियां। लेकिन घर का दरवाज़ा बंद था और बंद दरवाज़े पर एक ज़ंग लगा ताला झूल रहा था। बराबर में भी दोनों तरफ़ दरवाजों पर ताले पड़े थे।

"कहां गए यह सब लोग ? शायद बेदखल कर दिए गए ? अब कहां ढूंढूं उसे ?" वे चकरा गए।

दूर दूसरी गली के सिरे पर, जहां कभी एक लैम्प पोस्ट रोशन रहता था, स्ट्रीट लाइट का एक पीला-सा बल्ब रोशन था। जिसकी मद्धम-सी रोशनी उस सीमेंट की टूटी-फूटी चौखट तक आने से पहले दम तोड़ देती थी। उस वक़्त उस सीमेंट के चबूतरे के बीच में से ऊपर उठती हुई जीर्ण सीढ़ियों के अलावा कोई और जगह न थी जहां वे कुछ देर के लिए बैठ जाते।

उन्होंने गली के दोनों तरफ़ निगाह दौड़ाई। कोई भी तो नहीं था। कोई पथिक कोई प्राणी, कुछ भी तो नहीं था या शायद उन्हें ऐसा महसूस हुआ था। फिर वे उन सीढ़ियों पर बैठ गए बंद दरवाज़े से टेक लगाकर। कुछ देर गुमसुम बैठे रहे। तब एकाएक उन्हें सीने के बायीं ओर पसलियों के नीचे दर्द की एक टीस-सी उठती महसूस हुई। फिर धीरे-धीरे उनकी आंखें मुंदती चली गईं और होंठ भिंच गए।

ऐसे में उन्हें बस इतना याद था कि इस बंद दरवाज़े के पीछे एक खुला दालान है, सफ़ेद और काली चमकदार टाइलों से सुसज्जित। दालान के दायें तरफ़ दो जुड़वां कमरे हैं। बायें हाथ पर एक साफ़-सुथरा बावर्चीखाना, स्टोर और एक उजला गुसलखाना जिसके कोने से लोहे की एक गोल सीढ़ी ऊपर छत को निकल जाती है और छत पर जानकी के साथ, हलकी पुरवा में रेलिंग का सहारा लिए-लिए पुरी थिएटर से उठने वाली आवाज़ें सुनी जा सकती हैं और बादशाही मस्जिद के मीनार बिना किसी यत्न के देखे जा सकते हैं।

कुछ देर बाद जब सुबह के लक्षण प्रकट हुए तो म्युनिसिपल कमेटी के मेहतर विक्टर मसीह की नज़र उन पर पड़ी। वह यह समझा कि साहब सुबह की चहलक़दमी के बाद बैठे सुस्ता रहे हैं।

उसे क्या मालूम था कि अभी कुछ देर पहले जानकी बाई की सीढ़ियों पर बैठे साहब के मस्तिष्क में आपस में गडमड होती हुई पुरानी यादों का तस्वीरी फ़ीता चलते-चलते क्षण प्रति क्षण थमता जा रहा था...या शायद थम ही गया था।

दस्तक

पिछली रात आम दिनों से हटकर कुछ नहीं हुआ था। हम सबने मिलकर खाना खाया। बच्चे देर तक चहकते रहे उस वक़्त तक जब कि शरद ऋतु की छुट्टियों से संबंधित प्रोग्राम बनाते-बनाते हम सब नियमानुसार गहरी नींद सो गए।

रात का दूसरा पहर होगा जब अचानक मेरी आंख खुल गई। यों महसूस हुआ जैसे किसी ने धीरज के साथ मेरे कंधे पर हाथ रख दिया हो या जैसे दरवाज़े पर दस्तक हुई हो। मैं उठकर बैठ गया। मेरे साथ जुड़कर लेटा हुआ छोटा बेटा बेख़बर सो रहा था और बराबर के पलंग पर बेगम और नन्ही। लेकिन नींद उचट गई और मैं उद्विग्न होकर उठ खड़ा हुआ। चमेली की ख़ुशबू सारे घर में भरी हुई थी शायद रात को बाहर का दरवाज़ा खुला रह गया। इस ख़याल ने अधिक परेशान कर दिया। शायद उस ख़ुशबू के एहसास ने, जबकि चमेली का पौधा हमारे आस-पास कहीं भी नहीं था।

अपने कंधों पर गर्म शाल लेते हुए मैं ड्राइंगरूम से गुज़रकर सावधान क़दमों के साथ टी. वी. लाऊंज तक आया और यह देखकर हैरान रह गया कि बाहर का दरवाज़ा सचमुच खुला हुआ था। अनजाने ख़ौफ़ के अधीन मैंने एक-एक करके घर के सारे बल्ब रोशन कर दिए। बाथरूम और किचन में झांका, टैरेस पर से हो आया। वार्डरोब देख लिए। पलंग के नीचे और पर्दों के पीछे देखभाल कर हर तरह का इत्मीनान कर लिया। हर चीज़ अपनी जगह पर थी लेकिन मन में एक व्याकुलता-सी थी। एक अनजाना-सा ख़ौफ़ और चमेली की ख़ुशबू सारे घर में भरी हुई थी।

मैं हैरान था कि अचानक बाहर खुलने वाले दरवाज़े की ओर सरसराहट-सी महसूस हुई। जैसे वहां कोई था और अभी-अभी सीढ़ियां उतर गया हो। मैं एक पल के लिए रुका और फिर बिना सोचे-समझे मैं भी सीढ़ियां उतर गया।

मैंने देखा कि रात को पड़ने वाली नर्म बर्फ़ पर इंसानी क़दमों के हलके पड़ते हुए निशान थे। कोई नंगे पांव चलता हुआ निकल गया था। यह कौन हो सकता

था ? कुछ समझ में न आया या शायद नींद का उन्माद अभी टूटा नहीं था। और मैं अपनी इस निर्भयता पर हैरान पलटना चाहता था कि कार पोर्च के स्तंभ के पीछे ज़ीरो पावर के रात भर जलने वाले बल्ब की मद्धम रोशनी में मैंने उसे देखा।

वह कोकी थी। निःसंदेह वही बीस वर्ष पहले का नाक-नक्शा। बिलकुल वैसी की वैसी थी। उसके साथ खेलते, लड़ते-झगड़ते और उसे चिढ़ाते हुए मेरा लड़कपन गुज़रा था और जिसे जवानी के आरंभ में टूटकर चाहा था। वह नंगे पांव थी और उसने केवल एक हलकी-सी चादर ले रखी थी। वह सर्दी से कांप रही थी और उसके कांपते हुए हाथों में चमेली का हार था।

मैं हैरान खड़ा उसे देखता रहा। वह वैसी की वैसी थी। और इन बीस वर्षों में मेरे बाल सफ़ेद ही नहीं हुए थे बल्कि काफ़ी हद तक झड़ चुके थे। उसकी लम्बी, पतली उंगलियां उसी तरह कोमल थीं और उनमें चमेली का हार झूल रहा था। उसके माथे की चमक, गालों और होंठों की तपिश वैसी ही थी या शायद मुझे महसूस हुई। मैंने उसे पहचानने में कोई गलती नहीं की, बस हैरानी से उसे देखता रहा।

उस समय प्रातःकाल की अज़ानें हो रही थीं। वह उसी तरह स्थिर एवं मौन, कांपते हुए हाथों में चमेली का हार थामे खड़ी रही, मुंह से कुछ न बोली। लेकिन जब मैं उसे अपने बाजुओं में भर लेने के लिए आगे बढ़ा तो उसने मुंह फेर लिया। उसके उठे हुए बाजुओं में चमेली का हार उसी तरह कांप रहा था। फिर मैंने वह हार हमेशा की तरह लेकर अपने गले में डाल लिया। इस बीच वह मुड़ चुकी थी और नर्म बर्फ़ पर चलते हुए उसके क़दम तेज़ी से उठ रहे थे। मैंने उसे आवाज़ दी लेकिन वह रुकी नहीं। मैंने दौड़कर उसे रोकना चाहा तो घुटनों तक बर्फ़ में धंस गया और वह थी कि हलके क़दमों के साथ जैसे बर्फ़ पर तैरती चली जा रही थी। मैं बड़ी मुश्किल से शिवालय की ओर उतर जाने वाली खड़ी तराई की तरफ़ चलकर आया लेकिन तराई से आगे वह नहीं थी।

मैं वहीं ठहर गया। वह अचानक कहां निकल गई कुछ समझ में न आया। फिर मुझे अपनी इंद्रियों को एकत्रित करने के लिए शायद बहुत समय लग गया। सुबह की सफ़ेदी में, मेरे सामने जहां तक दृष्टि जाती थी हर प्रकार के निशानों से रहित बर्फ़ ही बर्फ़ थी। मैं पलटा। अपने गले का हार उतारकर पोर्च के स्तंभ के साथ टांग दिया और भय मिश्रित हैरानी के साथ घर की सीढ़ियां चढ़ आया।

उस वक़्त मेरी पत्नी जाग चुकी थी और किचन में व्यस्त थी। उसने मुझे यह भी नहीं पूछा कि मैं इतनी देर कहां रहा। शायद उसने यह ख़याल किया हो कि मुझे जागे हुए कुछ ज़्यादा समय नहीं गुज़रा और रात के हिमपात के बाद मैं चहलक़दमी को नीचे उतर गया हूं।

वह दिन याद करता हूं जब सारा छछ तुफ्-तुफ् कर रहा था। झलार कुएं की ओर पानी भरने के लिए जाने वाली लड़कियों की गति सुस्त पड़ गई थी।

कोठरियों में चिलमों की गुड़गुड़ाहट ऊंचे स्वरों में दम तोड़ गई थी और मुग़लों के हुजरे में तम्बाकू पीने वाले कमियों ने शाम की बैठक त्याग दी थी।

कोकी से मेरे मेल-जोल की सूचना अजी को कुछ देर से मिली लेकिन उन्होंने देर नहीं की। बिफरकर कारनिस से अपनी तलवार उतार ली और गुस्से से कांपते हुए केवल इतना ही कह पाए कि अगर मेरा बेटा हलाली है और मुग़ल खून है तो रुक्का पढ़ते ही शहर से वापस आएगा। लेकिन पहले मैं उस हराम फ़ेके की गर्दन मारूंगा।

उस समय मैं शहर में था और यह सब मेरी स्वर्गवासी मां ने बताया था। ऐसे में अजी को कौन रोकता ? हवेली में शोर मच गया और मेरी रोती-कुरलाती मां को पीछे धकेलकर बड़ा-दरवाज़ा पार कर गए। मेरे अजी का गांवों की गलियों में यों निकलना था कि दम भर में भरी-पूरी आबादी वीरान होकर रह गई। सब अपने-अपने घरों में दुबक गए और जब तक वह फ़ेके कुम्हार के दरवाज़े पर दस्तक देते, फेका अपनी बेटी कोकी समेत ग़ायब हो गया।

उस रोज़ अजी, डोलते-संभलते सारी आबादी में घूम गए लेकिन फ़ेके और कोकी का सुराग़ कहीं न पाया। वे सख़्त हैरान थे कि उन दोनों को ज़मीन निगल गई या आसमान खा गया। वह दिन और वह रात, उनके गुस्से की तलवार खुद उनके लहू में नहाती रही।

अगले रोज़ उन्होंने ऐलान किया कि आबादी में कोई नंगे सिर नहीं निकलेगा और जरनेली सड़क से गांव की ओर आने वाले रास्तों पर कोई सवार नहीं आएगा। मार्ग से सब ऊंट की नकेल और घोड़े की बागें थामे पैदल गुज़रेंगे जिससे कि मुग़ल हवेली का अपमान न हो। यह ऐलान कर चुकने के पश्चात उन्होंने मुंशी को बुलाया और मेरे नाम शीघ्र घर लौटने का पत्र लिखवाया।

उधर मैं अपने कालेज के बोर्डिंग हाउस में कोकी का दिया हुआ कड़ा बाजू में पहने, मुर्झाया हुआ चमेली का हार गले में डाले और छाती पर इत्र चमेली मले, सिर्फ़ नीले रंग की पतलून और बद्दी वाली चप्पल में घूमता था।

जब अजी का खत मिला तो यह बात मेरी कल्पना में भी न थी कि यह सब कुछ इतनी जल्दी हो जाएगा। लड़कपन गुज़ार कर जवानी की सीमा पर कोकी से मैं मिला ही कितनी बार था। मैंने तो प्रायः उसे घंटों इंतज़ार करवाया था। मिलने का वादा करके भूल जाता था। लेकिन यह सब पलक झपकने में हो गया।

मैंने वार्डन के कमरे में बैठकर छुट्टी का प्रार्थना-पत्र लिखा और गांव के लिए निकल खड़ा हुआ। मैं अभी जरनेली सड़क पर उतरा ही था कि कीमा आजड़ी मिल गया। उसने चरते हुए ढोर-डंगरों को वहीं छोड़कर मेरा किताबों और कपड़ों से भरा हुआ अटैची केस उठाया और ख़ामोशी से आगे हो लिया। वह चुपचाप था और मेरे हर सवाल का जवाब सिर्फ़ हां या न में दे रहा था। मैंने आगे बढ़कर उसे रोककर

पूछा तो कहने लगा, "नेका क्या बताऊं—तुम पढ़-लिखकर बड़े आदमी बनोगे। छोड़ो जो हुआ सो हुआ।"

मैं चकरा गया और अटैची को एक झटके के साथ उसके सिर से खींचते हुए वहीं बैठ गया।

"अब बोल भी, बताता क्यों नहीं ? हुआ क्या है ?"

"क्या होना था नेका। तुम्हारा खेल था और किसी की ज़िंदगी उजड़ गई। ग़रीब लोगों का क्या है यों ही गुज़र जाते हैं।"

"ओए ! कौन गुज़र गया ? अब बक भी।"

"नेका ! अल्लाह तुम्हें ज़िंदगी दे—बस यों समझ कि फेके की बेटी कोकी गुज़र गई। तुम ठहरे मुग़लों की औलाद और वह बेचारी—मेल हो तो कैसे ?"

"गुज़र गई ?"

मुझे चक्कर-सा आ गया और उसकी बात पूरी तरह न सुन सका।

"बेटा—तेरह बरस की लड़की किसी बुड्ढे से ब्याह दी जाए तो गुज़र ही गई ना।"

"पर यह हुआ कैसे ? कैसे हुआ यह सब ?"

मैं गांव पहुंचने तक यही रट लगाए रहा। लेकिन वह सिर पर अटैची थामे, तेज़-तेज़ क़दम उठाता, बस चलता ही गया।

हुजरे (कोठरी) के साथियों ने बताया कि जिस रोज़ अजी को पता चला है उसके अगले रोज़ शाम को फेके और कोकी, दोनों बाप-बेटी को मस्तान शाह के दरबार के पिछवाड़े से खोज निकाला गया। पहले दोनों को सख़्त मारा-पीटा गया और फिर रात की नमाज़ के बाद कोकी का निकाह उसके बाप की उम्र के कुम्हार से पढ़वा दिया गया।

मैंने यह सुना और चुपचाप हवेली की ओर चल दिया।

लेकिन कोकी को मेरे गांव पहुंचने की सूचना मिल चुकी थी और वह अपने घर से निकलकर ऊंची हवेली के छज्जे पर जा बैठी थी। सारा गांव नीचे हैरान खड़ा था और वह हमारी हवेली के रोशनदानों से झांकते हुए और छाती पीटते हुए रो-रोकर मेरी मां से एक ही प्रार्थना किए जाती थी : "ओ माए ! नी माए ! तेरे रोशनदानों में बैठी रहूंगी। जाऊंगी नहीं। मुझे यहीं बैठी रहने दे।"

फिर मैं अपने आंगन से निकल आया और वह मुझे टुकुर-टुकुर देखती रही। रोई नहीं, चीख़ी नहीं। उसने कुछ भी तो नहीं कहा। मेरे देखते-देखते हमारे सेवकों ने उसे खींच-खींचकर छज्जे से नीचे उतारा। हाथ-पांव बांधे और उसके घर ले जाकर बाहर से कोठरिया की कुंजी चढ़ा दी। मैं गांव में होते हुए, कुछ भी न कर सका।

मैंने बताया ना कि उस वक़्त मैंने मैट्रिक के बाद नया-नया कालेज में दाखिला लिया था।

अम्मी ने मेरे बाजू से उसका दिया हुआ कड़ा उतार लिया और मुंशी के साथ मुझे दोबारा शहर भेज दिया। अब मेरे गांव आने पर बंदिश लगा दी गई थी। शाम को वार्डन नियम से मेरी कमरे में मौजूदगी का रिकार्ड रखता और अजी को बिना नाग़ा ख़त लिखकर मेरी प्रोग्रेस की रिपोर्ट से सूचित करता।

बोर्डिंग हाउस में मेरे पास दो ही निशानियां थीं। मोतिए का सूखा हुआ हार और चमेली के इत्र की एक छोटी शीशी। हार को मैंने खूंटी पर टांग दिया था और इत्र की शीशी किताबों वाली अलमारी में छुपा दी थी। अलमारी पर ताला लगा था और मेरे कमरे में चमेली की ख़ुशबू भरी थी।

शाम को मैं प्रायः दोस्तों के साथ घूमता-फिरता लारी अड्डे तक निकल जाता और नियाज़ बस सर्विस के लिए नियत किए गए कोने में उस समय तक ठहरा रहता जब तक कि बस वापस न आ जाती। अंतिम फेरे पर बस से उतरते हुए करीम उस्ताद गांव की ख़ैर-ख़बर बताता और दोस्तों के साथ चुपचाप बोर्डिंग की ओर चल पड़ता।

शहर फिर शहर था, एक हलचल थी।

दिन गुज़र रहे थे और शहर की हलचल ने कोकी की याद को धुंधलाना शुरू कर दिया था परन्तु शाम के समय दोस्तों के साथ लारी के अड्डे तक निकल जाना और अंतिम बस देखकर पलट आना अब जैसे आदत-सी बन गई थी।

एक दिन करीम उस्ताद ने बस से उतरते हुए मुझे अलग ले जाकर बताया कि कोकी ने अपने पति को छुरी मार दी है। वह बच तो गया है लेकिन कोकी के हाथों और पैरों में रस्सी डालकर पाबंद कर दिया गया है। यह सुनकर एक क्षण के लिए उसकी याद ने सीने में करवट ली लेकिन अगले दिन परीक्षा का प्रोग्राम मिलने पर मैं सब कुछ भूल-भालकर अपनी किताबों में खो गया। यह ध्यान ही न रहा कि उन किताबों के पीछे एक छोटी-सी शीशी संभालकर रखी थी।

परीक्षा के पश्चात गर्मियों की छुट्टियां मिलने वाली थीं और अजी के ख़त से मालूम हुआ था कि इन्हीं छुट्टियों में मेरी बहन की शादी की तारीख़ तय हो गई है। अजी ने मुझे शादी से पंद्रह दिन पहले पहुंचने की ताकीद की थी।

परीक्षा के रेले ने तट पर बनाए गए सारे घरौंदे जैसे गिरा दिए थे और मैं खुद को बहुत हलका-फुलका महसूस कर रहा था। छुट्टियां मिलीं तो कपड़ों और किताबों से भरी अटैची के साथ नियाज़ बस सर्विस तक आते हुए गांव के लिए दिल में कुछ ज़्यादा उमंग नहीं थी। बस एक हलकी-सी लज्जा का आभास था, कोकी के लिए सहानुभूति या दया की एक मामूली-सी भावना और इसके सिवा और कुछ नहीं।

गांव पहुंचकर मेरा ज़्यादातर समय शादी से संबंधित प्रबंधों और हुजरे में दोस्तों के साथ खुशगप्पियों में गुज़रा। मुझसे इतना भी न हुआ कि उधर जाता। दोस्तों

से जो कुछ सुना वह मेरे लिए नया नहीं था। फिर शादी का हंगामा शुरू हो गया। मेहमानों की रेल-पेल में किसी बात का होश न रहा था।

शादी की रात ड्योढ़ी से बाहर निकल रहा था कि लड़कियों का एक रेला आया जिसमें मैंने उसे अंतिम बार देखा। वह सबसे पीछे थी। उसने अपने सोए हुए बेटे को कंधों से लगा रखा था और मुझे देखकर एक क्षण के लिए ड्योढ़ी में ठहर गई थी। फिर वह चुपचाप आगे बढ़ गई और मैं भी ड्योढ़ी में ज़्यादा देर नहीं रुका।

मेरी बहन ने मुझे बताया था कि उस दिन कोकी उसके पास कुछ देर के लिए बैठी थी और उसने मेरे बारे में पूछा भी था।

अब लड़कियों से सिर्फ़ इतना सुना है कि उसके पास मेरी पी हुई सिग्रेटों के टुकड़े अब भी सुरक्षित हैं जो उसने मेरे कमरे से उठाए थे। उसे मुझसे कोई गिला नहीं। कहती है वफ़ा तो बेवफ़ा के साथ ही की जा सकती है।

जब सब घर वाले सो जाते हैं तो वह सिग्रेटों के टोटों का डिब्बा निकाल एक-एक टोटे को होंठों से लगाती है और सैंत कर रख देती है। किसी से कुछ नहीं कहती। मैं भी कभी चमेली की खुशबू घर नहीं लाया।

लेकिन यह मौसम का पहला हिमपात है। बाहर जहां तक नज़र जाती है बर्फ़ जमी हुई है। बेगम किचन में है, बच्चे गहरी नींद में सो रहे हैं और घर में चमेली की खुशबू हर तरफ़ भरी हुई है।

दिल के मौसम

उस दुराचारी के दाएं गाल पर तिल है। उसके होंठ पुखराजी रंग की अंगूठी हैं और बोल तराशे हुए नगीने—जब बात करती है तो पुखराजी होंठों के नगीने अपने रंग बदलते हैं।

उस कमरे में चांदनी बिछी है। गावतकिए धरे हैं। वह ऊपर रहती है जहां लोगों का तांता बंधा रहता है। ऊपर जाता हुआ बलखाता लकड़ी का ज़ीना बहुत संभलकर कदम रखने पर भी अंगड़ाइयां तोड़ता है।

निचली मंज़िल में वह रहता है जिसने पुखराजी होंठ नहीं देखे। उसने वह भी नहीं देखा कि नगीने किस तरह रंग बदलते हैं। बस सुना है कि उसके होंठ पुखराजी रंग की अंगूठी हैं और बोल तराशे हुए नगीने। उस कमरे में चांदनी बिछी है और गावतकिए धरे हैं।

पहले पहल जब वह यहां नया-नया आया था उस शाम ऊपर के माले से फूटता हुआ रुपहला ठहाका हर ओर बढ़ते सुरमई अंधेरे के फैलाव में ज्वार-भाटा बन गया था और वह लहरों की मार पर अकेला था। उठती-गिरती संगीतमय लहरों के झकोरे उसे बरामदे में लिए फिरे। ऊपर के माले में होंठों के नगीने रंग बदल रहे थे और वह निढाल बरामदे की रेलिंग पर झुकता चला गया।

उस शाम उसने तेज़ धूप और बारिशों से सियाह लकड़ी के ज़ीने की चरचराहट पहली बार सुनी थी। ज्वार-भाटा ठहर गया था और कोई बहुत आहिस्ता, संभलकर कदम रखता, ऊपर से उतर रहा था। नीचे आती उखड़ी हुई सांसें बलखाते हुए ज़ीने में, चक्कर खाती लड़खड़ाती, अंधेरे में विलीन हो गईं।

भयानक उठें मारता अंधकार रात भर शांत रहा और उसने वहीं रेलिंग पर झुके-झुके सुबह कर दी।

फिर समय बीतने के साथ-साथ वह भी अपने-अपने चाहने वालों में घिरता चला गया।

मुद्दतें गुज़र गईं। वह उस हुजरे में एकांतवासी। कमरे में बिछी हुई चटाई पर अपने सच्चे श्रद्धालु चेलों को आत्मस्थ की दशा में पापों की क्षमा मांगने की धीमी और तेज़ आवाज़ों के बहाव में डूबते-उभरते देखता रहा है।

वह पहली शाम के अंधेरे का संगीतमय फैलाव क्षमा-याचना के शोर में कहीं खो गया है।

उसने हमेशा अपने मित्रों के रूबरू उस दुराचारी के ज़िक्र से बचना चाहा है लेकिन किसी न किसी हवाले से पुखराजी होंठ और रंग बदलते नगीनों का चर्चा छिड़ ही जाता है। सच्चे श्रद्धालु चेले यह नहीं जानते कि क्षमा-याचना की धीमी-धीमी प्रार्थनाएं कैसे आन की आन में तेज़ नदी का रूप धारण करती हैं और नदी की उठती-गिरती लहरों में उनका पथ प्रदर्शक धर्म-गुरु बहता चला जाता है, यहां तक कि सुबह की सफ़ेदी प्रकट होती है और ऊपर के माले से बहुत संभले हुए क़दम डगमगाकर चक्कर खाते हुए सुरमई अंधेरे को उजाड़ देते हैं। लकड़ी से बने ज़ीने की चरचराहट रात भर के ठाठें मारते पराजित होते अंधकार में खोकर शांत हो जाती है।

ज़माने बीत गए।

ऊपर लोगों का तांता बंधा रहता है और उसने यह देखा नहीं बस सुना है कि उसके दाएं गाल पर तिल है और उसके होंठ पुखराजी रंग की अंगूठी...

वह जानता है कि अपने चाहने वालों के सामने अदाएं दिखाते हुए वह प्रायः उस पर चोटें करती, फब्तियां कसती है। उसने भी उसे कभी अच्छे हवालों से याद नहीं किया है पर वह पहली शाम के अंधेरे का फैलाव अब एक आकार बनता जा रहा है।

कहते हैं बुरे दिनों में पुखराज मुसीबत अपने सिर लेता है।

ज्वार-भाटा थम नहीं चुकता, अन्दर की हर चीज़ ऊपर-नीचे हो गई है।

पिछले कई दिन से सबका पथ-प्रदर्शक धर्म-गुरु मौन है। चेलों को कोठरी तक आने की इजाज़त नहीं।

वह बरामदे की रेलिंग पर झुके-झुके सुबह करता है और उसी रूप में शाम का सुरमई अंधेरा ख़ामोशी से बढ़ता रहता है—फैलता रहता है, यहां तक कि सुबह की सफ़ेदी प्रकट हो जाती है।

बाहर ज़ीना भी मौन है। बहुत दिनों से ऊपर भी कोई नहीं गया।

आज शाम समेत तमाम शामें गूंगी हैं और वह रेलिंग पर तराज़ू के पल्लों की तरह दोनों ओर झूल गया है। शताब्दियां बीत गईं।

वह धीरे-धीरे चलती आज पहली बार अपनी बाल्कनी तक आई है।

नीचे सहसा जाने कहां से इतनी जनता उमड़ पड़ी है। तेज़ सीटियों के शोर में सब गिरते-पड़ते ऊपर ही खिंचे चले आते हैं। इतने चेहरों में दमकते सच्चे श्रद्धालु

चेलों के चेहरे रेलिंग पर तराज़ू बने धर्म-गुरु की आंखों में धुंधला जाते हैं। लकड़ी का ज़ीना बोझ से कड़कड़ाता है।

धर्म-गुरु बरामदे की रेलिंग से घिसटता अन्दर की कोठरी से ऊपर जाती हुई उन सीढ़ियों तक आता है जबकि दरवाज़े पर ताला डाल दिया गया है।

बाहर सीटियों और तालियों का शोर, बिफरे हुए अंधकार के निरंतर रेले हैं जो बलखाते लकड़ी के ज़ीने से होते हुए बंद दरवाज़ों पर दस्तक देते हैं।

सहसा शाम के सुरमई अंधेरे के फैलाव में, पुखराजी होंठों के बोल, तराशे हुए नगीने अपना रंग बदलने लगते हैं।

सब शांत, हर ओर मौन छा जाता है।

वह बाल्कनी से झुककर खांसती हुई बहुत ठहर-ठहरकर हमेशा के लिए धंधा छोड़ देने का ऐलान करती है। इस ओर से वाद-विवाद करने वाले उमड़ रहे हैं।

कहते हैं बुरे दिनों में पुखराज...

धर्म-गुरु सुरमई अंधेरे की उठती-गिरती संगीतमय लहरों पर तैरता तिनका था जो बहता हुआ कांपते हाथों से ऊपर जाती अंधकारमय सीढ़ियों का दरवाज़ा खोलता है।

पहली सीढ़ी पर कदम धरता है।

बाहर का शोर मद्धिम पड़ता जा रहा है और लकड़ी के ज़ीने की टूटती अंगड़ाइयां। दूसरी सीढ़ी के बाद तीसरी—कुछ सुझाई नहीं देता।

लड़खड़ाते कदमों से वह धीरे-धीरे ऊपर की ओर रवां है।

सीढ़ियों की अंधकारमय सनसनाहट में कोई बहुत आहिस्तगी से संभलकर कदम रखता उसके करीब से होकर नीचे कोठरी की ओर निकल जाता है।

वह अपनी धुन में ऊपर पहुंचता है।

ऊपर पहुंचकर देखता है कि सजे-सजाए दो खाली कमरे हैं। एक में चांदनी बिछी है। गावतकिए धरे हैं। एक ओर कपड़े से ढके हुए हारमोनियम, तबला और चमड़े मंढे हुए घुंघरुओं की एक जोड़ी है।

बाल्कनी में रंगीन चिलमन, अंधी हवा के साथ झूल रही है और नीचे सीटियां, शोर और उसके श्रद्धालु चेले...।

नक़्क़ालों की रात

सुनते आए हैं कि मार्गशीर्ष के दिनों में छिदरे बादलों की आवारा टुकड़ियां दिलों में दरारें डाल देती हैं, सीटियां बजाती हवा में चीख़ सुनाई देती है और बिजली की चमक, बरछी की लपक को निगल जाती है।

बस ऐसे ही दिन थे, अभी पूरे तौर पर सर्दी शुरू नहीं हुई थी और खुले, भरे हुए खलियानों पर चारों दिशाओं से घटाएं उमड़ी चली आ रही थीं।

बाबा लोग गर्मियों की लंबी दोपहरों के ढलने पर अपना दुख प्रकट कर चुके थे। पूरी पार्टी के हाथों में घिसे हुए ताश के बदरंग पत्ते थे और एक-दूसरे से पिटकर इस नतीजे पर नहीं पहुंच पाते थे कि आज जीता कौन है और हारा कौन।

"आख़िर जीत किसकी हुई ?" एक ने पूछा।

"जीत टीकरी वाले की। जीत मुग़लों के हुजरों की हुई।" सबने मिलकर जवाब दिया।

मुग़ल मैं था—और मुग़लों का हुजरा ज्यों का त्यों था। सीलन खाया हुआ ठंडा फ़र्श, घुप्प कमरा और बिना ताकों की चौकोर खिड़कियां जिनमें से बाहर का अन्धेरा अन्दर घुस आया था।

सहसा भगदड़ मच गई। लड़के अन्धेरे में एक-दूसरे पर गिर रहे थे और चलते हुए जूता की आवाज़ के साथ लंबी दूर जाती चीखें खिड़कियों में से बाहर के अन्धेरे को धकेलती हुजरे के चारों ओर फैली जंगली झाड़ियों में दम तोड़ने लगीं।

जूता चल रहा था और मुग़लों का हुजरा ज्यों का त्यों था, जैसे मेरे बाप-दादा छोड़कर गए थे और हुजरे में अपने बड़ों के नक़्क़ाल बाबा लोग सीलन खाया फ़र्श, घुप्प कमरा और बिना ताकों की चौकोर खिड़कियों में अन्दर गिरता हुआ अन्धेरा।

जब होश आया तो जूता मेरे हाथ में था और समझ में नहीं आ रहा था कि किस दिशा में चलाऊं और अन्दर बोझिल अंधकार सहमा हुआ था। मैं सोचता रहा, फिर ज़रा ठहरकर मैंने एक कान पर हथेली जमाई और दूसरे कान पर जूता,

फेफड़ों का पूरा ज़ोर लगाकर चीखा, "कोई है ?"

बोझिल अन्धेरे से टकराकर मेरी आवाज़ की प्रतिध्वनि चारों दिशाओं में टूटकर बिखर गई। जवाब में मिस्कीने ने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोल दिया। अन्दर उमस थी और बाहर हुजरे की चारों दिशाओं में सीटियां बजाती हवा और सार की सरसराहट, तब ज़ोर से बिजली कड़की और हमने आकाश पर तने हुए धीमी चाल वाले मटियाले बादलों को देखा और अन्धेरे में सीले हुए फर्श पर घुटनों के बल चलकर अपने-अपने पैर तलाश करते हुए दरवाज़े की चौखट पर आकर ठहर गए। सामने फिर एक लम्हे के लिए धीरे-धीरे आकाश पर बहते हुए पानी से भीगे बादबान (पोतपट) रोशन हुए और गांव से दो कोस परे, जरनेली सड़क पर गरज टूटकर गिरी।

"यार सुना है, मौत से कुछ देर पहले मरने वाले की आंखों में ऐसा ही अंधकार छाने लगता है।"

"क्या मतलब ?"

मेरी आंखों की दोनों पुतलियां एक क्षण के लिए फैलीं और मैंने देखा सामने का दृश्य भयानक था, कटा-फटा हुआ बेढब अंधेरा—

"यही कि दोपहर भी हो, तो भी यूं लगता है जैसे अंधेरे की धुंध फैलती जा रही है और सब ओर जैसे शामें पड़ गईं।"

"लेकिन यार एक बात समझ में नहीं आई।" वह दरवाज़े की चौखट पर बैठ गया।

"कहीं हमारे साथ भी ऐसा तो नहीं हो रहा कि बाहर हर तरफ़ दोपहर हो और हम समझ रहे हों कि शाम हो गई।"

मिस्कीने ने मुझे भी उलझा दिया।

"यार हम कितनी देर खेलते रहे होंगे ? जब ताश खेलकर उठे हैं, तब क्या समय था ? और क्या सब दोस्तों में आज फिर जूता चला था ?" मैंने बहुत से प्रश्नों की बौछार कर दी।

"यार मुझे तो लगता है, जैसे वह सब बीते हुए दिनों की याद है। कहीं हम दोनों मुगलों की इस चौखट पर दम ही न दे जाएं।"

यहां पहुंचकर दोनों को सांप सूंघ गया। सीटियां बजाती हवा में सार की सरसराहट मद्धिम पड़ गई। "तुमने अज़ान सुनी थी ?" बहुत देर बाद मिस्कीने ने सवाल किया।

"नहीं, लेकिन हो गई होगी, हमने ध्यान नहीं दिया।"

"यार इतना ध्यान तो रखना चाहिए ना। कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन अज़ानें हों ही नहीं, दोपहर हो और हमारी आंखों में अंधेरे की धुंध फैलती जा रही हो।" हम देर तक यूं ही हुजरे की चौखट पर बैठे रहे। फिर सहसा ख़्याल आया कहीं घर वाले हमें ढूंढ ही न रहे हों। हम उठ खड़े हुए और सार को दोनों हाथों

से हटाते हुए तेज़ कदम उठाते घरों को चल दिए।

अभी छींटा नहीं पड़ा था और गहरे बादल चारों ओर से बहुत झुके हुए थे—सार के लंबे फैलाव को गुज़ारकर हम चुपचाप गांव के तीन ओर फैले हुए दुर्गंधयुक्त पानी वाले जोहड़ के किनारे चल रहे थे कि हज़रत साहब के दरबार की ओर से नौबत की घुटी-घुटी आवाज़ सुनाई दी। हम दोनों ठिठक गए। आज गुरुवार भी नहीं था फिर आखिर क्या कारण हुआ ? आवाज़ बराबर आ रही थी।

जाने कितनी देर तक हम यूं ही मूर्ति के समान खड़े रहे थे। यूं लगता था जैसे धीरे-धीरे जोहड़ के किनारे का कीचड़ उभरकर हमारे कदमों में आ गया हो और धीरे-धीरे हम अन्दर ही अन्दर धंसते जा रहे हों। जोहड़ के किनारे बड़े मटियाले मादा मेंढक गले फुला-फुलाकर गा रहे थे और हज़रत साहब की ओर से नौबत की आवाज़ हर बदलती हुई हवा की दिशा के रुख़ पर हमारे दाएं-बाएं से होकर गुज़र रही थी।

सामने जनरेली सड़क के पार, गरज एक बार फिर टूटकर गिरी और मैंने देखा दरबार के ऊंचे कलश, धीमी गतिमान बोझिल बादबानों में घिरे हुए थे और नौबत की घुटी-घुटी आवाज़।

सहसा मेरे पीछे खड़े मिस्कीने ने एक चीख़ मारी और कमान से निकले सनसनाते हुए तीर की तरह मेरे करीब से निकल गया। मैं ठहरे हुए गंदले पानी में जाते-जाते रह गया और बहुत मुश्किल से संभला था। साधारण दिनों में असाधारण घड़ियां थीं और समय जैसे ठहरा हुआ था।

मैं कांपता हुआ, दबेपांव सांस दबा के अपनी गली तक आया। ड्योढ़ी का दरवाज़ा खुला था। मुझे ड्योढ़ी से सहन तक जाने में शायद बहुत समय लग गया। घर के सहन में, यूं लगता था जैसे अभी-अभी सूरज डूबा हो। मेरे घर लौट आने पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सामने बराबर-बराबर बिछी हुई बान की झिलंगा खाटों पर कोई नहीं था और कोनें में सरीं के नीचे तन्दूर के धड़े पर सरसराता हुआ साया मेरी मां का था।

अजीब बात है अभी-अभी तो यूं लगा था जैसे रात का दूसरा पहर होगा। मैं फिर निकल आया।

नौबत की आवाज़ गलियों की भूल-भलय्यों में भटक रही थी। मैं उसकी उंगली थामे बे सोचे-समझे दरबार की ओर चल पड़ा। लोगों के जत्थे उस ओर जा रहे थे। गले में रूमालों की जगह नए दस्तरख़्वान लपेटे चरचराती चप्पलों के साथ हर कदम पर बल्लम और उत्कीर्णित डांकियां टेकते माहिए की तानें एक-दूसरे से उचकते हुए वीरु ताजे-बाजे के गांव वाले। उनके दरमियान में फाटदार कुरता पहने एक नौजवान तेल से चपड़े हुए गलमुच्छों पर हाथ फेरता हुआ लंबे-लंबे डग भरता उनके आगे चल रहा था।

हम मुग़ल शहज़ादे प्रायः तपती दोपहरों में अपने पालतू कुत्तों को साथ लिए ताजे तक फैले हुए जंगल में गीदड़ों के पीछे निकल जाते थे और रात गए वापसी पर ताजे-बाजे की खड़ी फसलों को उजाड़ते, लूट-मार करते, ललकरे मारते हुए आते थे—मैं ताजे-बाजे के अधिकांश लड़कों को जानता था, लेकिन इस टोली में कोई भी परिचित न था। उनके माहिए की तानें बराबर में खड़ी हमारी हवेली की दीवार पर से होती हुई अन्दर आंगन में झांक रही थीं "बेग़ैरत" ताजेवाले हमारे बड़ों के कामे थे।

मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने रोकना चाहा लेकिन न चाहते हुए भी उस गाती हुई टोली के पीछे चलता रहा।

दरबार के बाहर सीमेंट के ऊंचे चबूतरे पर और उसके साथ दूर तक लोग बैठे हंसी-ठट्ठा कर रहे थे।

दरमियान में पंडाल बना हुआ था और दरबार के ऊंचे कलश से पंक्ति-दर-पंक्ति नीचे आते हुए ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ाते, स्याह झंडे के नीचे मलंगों के डेरे में नौबत बज रही थी। मलंगों के छप्पर से लेकर अर्द्ध-गोलाई में दरबार की दीवार तक सिरों से ऊपर निकलती मशालें रौशन थीं और चारों दिशाओं से उमड़ती हुई घटाएं हज़रत साहब के दरबार के ठीक ऊपर जमा हो रही थीं—

तमाशा शुरू ही होने वाला था। नौबत रोक दी गई। मैं बहुत देर तक कीमे और फीके को ढूंढ़ता रहा। वह कहीं नज़र नहीं आ रहे थे।

बीच में दरियां बिछते ही साज़िंदे आ गए और उनके पीछे छम-छम करते बने-संवरे नक़्क़ाल छोकरे, चारों दिशाओं में भटकती मशालों की पीली रोशनी में घूम-घूमकर अदाएं दिखाते, एक-दूसरे के कूल्हों पर चुटकियां भरते थे।

एक-दूसरे के मुक़ाबले में ललकरे-सीटियां मार-मारकर दोनों गांव के नौजवान बेहाल हो गए, बीच में रखे रौशन हंडों को दरबार की दीवार पर टिका दिया और बीच में खड़े बड़ी मशाल वाले ने 'आह' भरी।

'आह' की तेज़ आवाज़ ऊपर उठी, हर ओर फैलने का प्रयत्न करती हुई, लेकिन जैसे दरबार की दीवारों और अर्द्ध परिधि में डटे हुए लोगों की बाढ़ से रास्ता न पाकर वहीं ठहर गई। ऊपर मटियाले बादबान (पोतपट) और झुक आए थे। मैंने वातावरण में सारंगी की तेज़ आवाज़ को जमे हुए देखा। सुनता रहा। निगाहों से छूता रहा। उस जमी हुई आवाज़ के अनगिनत रंग थे। एक-दूसरे से मुख्तलिफ, विलय न होने वाले और नीचे दरबार के अहाते में बदले के लंबे सिलसिले थे जो हमारे गांव से ताजे-बाजे तक निकल गए थे। ज़माने हुए शुरू ठंड के दिनों में बरछी के चमकते हुए फल ने जो खून की लहर सिर से गुज़ारी थी उसी लहर में आज भी पहचान खोई हुई थी।

सामने रौशन मशाल की थरथराती पीली रोशनी में 'आह' भरने वाले का खुला

मुंह ऊपर को उठा हुआ, एक हाथ कान पर और मुंदी हुई आंखें। यूं लगता था जैसे इर्द-गिर्द बैठे ललकारे मारते हुए जवान और बच्चे सब इस 'आह' भरने वाले को रो रहे हों और छम-छम करते संवरे सांगी छोकरों का लेप बह गया हो, उनके सीनों के कृत्रिम उभार ढलक गए और तेज़ बारिश ने उनके रेशमी कपड़ों में छिपे मरदाना शरीरों को स्पष्ट कर दिया हो।

मैं बौखलाया हुआ, तेज़ी से उठा और बराबर की अंधेरी गली में कूद गया। मैं वापस जाना चाहता था लेकिन घर में तो अभी कुछ देर पहले सूरज डूबा था। आंगन में बराबर बिछी हुई बान की झिलंगा खाटें, अजी के सिरहाने नीची लालटेन और कोने में सरीं का पेड़ जिसकी सरसराहट ऐसी थी जैसे निरंतर पत्ते गिर रहे हों।

मैं अंधेरी गली में था, एक लम्हे के लिए कड़कड़ाती दोपहर ने घेर लिया और मैं नंगे पांव आंखों में धुंध लिए हुए भटक गया।

"वेल—वेल ताजे बाजे के शेरे कहार की एक रुपये की वेल—हज़ार की वेल।"

मैं फ़ौरन पलटा। मैं ताजे बाजे के शेरे कहार को एक नज़र देखना चाहता था, मैंने पिछले सोमवार, मंडी में लंबी कबड्डी खेलते हुए कैंची मारकर मीरे लाले की टांग तोड़ दी थी। मैंने बहुत हाथ-पैर मारे लेकिन शेरे के गाल पर से रुपये का नोट, सांगी छोकरे की चुटकी के साथ उठते हुए न देख सका। मैंने अपने बिलकुल सामने ऊंचे तुर्रे वाले का कंधा दबाया, "शेरा कहां है जी ?"

"वह सामने खड़ा है अपनी मां का खसम। फाटदार कुरते में।"

मैं अभी फाटदार कुरते में उस मां के खसम को तलाश नहीं कर पाया था कि मेरे दाएं-बाएं बहुत-सी घुटी-घुटी आवाज़ें आईं। ये सब लोग उसकी कुंआरियों के साथ अपने रिश्ते जोड़ रहे थे। फिर बूंदा-बांदी शुरू हो गई रंग में भंग पड़ गई। लोग उठने लगे।

बीच में दोनों लोचदार छोकरे उसी तरह लहक-लहककर गा रहे थे और उनके हर ठुमके पर फरियाद की आवाज़ आती थी, "वेल, वेल रुपये लख दी वेल, शेरे ताजे बाजे की पांच बारी की वेल—एक रुपये की वेल।"

खड़े हुए मशाल वाले सांगी उस्ताद ने रुपया अपनी ढीली पगड़ी में उड़सते हुए एक बार फिर 'आह' भरी।

मैं गली के अंधेरे में आगे निकलकर रोशनी में जाना चाहता था, क्या पता फाटदार कुरते में शेरा नज़र आ ही जाए। मैं अभी आगे निकल जाने का रास्ता ही ढूंढ रहा था कि किसी ने मेरे कालर में हाथ डालकर घसीट लिया।

वह मिस्कीना था। अंधेरे में उसके चमकते हुए स्याह चेहरे पर शैतानी मुस्कराहट थी और वह थर-थर कांप रहा था।

"मेरे पीछे चले आओ" वह फुसफुसाया।

उसकी ज़ुबान लड़खड़ा रही थी। वह लंबे-लंबे डग भरता अन्दर अंधकारमय गली में दूर तक उतर गया। सांगी उस्ताद ने चारबैते नें उधालेवाला मशहूर कवित्त शुरू कर दिया था। नाचने वालों के कसे हुए कूल्हों पर बजते हुए चमड़े के कौड़े की 'ठाह-ठाह' गांव के बाहर जमे हुए अंधकारमय सन्नाटे को छूकर वापस पलटी और उसमें तमाशाइयों के ठहाकों की गूंज...

अब जमकर बारिश शुरू हो गई थी।

"हुआ क्या है ?" मैं मिस्कीने के पीछे लपका।

"बस निकल आ मिरज़े। तू नहीं जानता, आज ख़ून-ख़राबा होकर रहेगा। ताजे बाजिए ख़ाली हाथ नहीं आए। हर एक की डाब में तमंचा है और अपने गांव वाले मिरज़े भी तैयार हैं। बस दो घड़ी की देर है, एक-दूसरे को बिछाकर रख देंगे। आज कुछ होकर रहेगा। मिरज़े तू दुश्मनदारी वाला है। बस चला आ।"

मैं लश्टम-पश्टम मिस्कीने के पीछे आ रहा था। मैंने ख़ुद कुछ देर पहले कड़कती बिजली की चमक में दरबार के पिछवाड़े, अन्दर कोट से आने वाले अपने रिश्तेदारों के हाथों में चादरों में लिपटी बरछियां देखी थीं।

हम गली का लंबा चक्कर काटकर हुजरे वाले रास्ते तक पहुंच गए। अब गांव एक ओर रह गया था और सामने कच्चे रास्ते के साथ-साथ जोहड़ के ठहरे हुए पानी में सुरमेदानी की सिलाइयों वाली तेज़ बारिश हो रही थी। सामने हुजरे की चारों दिशाओं में फैली सार की रहस्यमय सरसराहट में दरबार से आती ढोलक की थाप और घुंघरुओं की छमाछम शरण खोज रही थी। अब बारिश ने अपना ज़ोर दिखाना चाहा था।

हम पिंडलियों तक कीचड़ में लथपथ चलते रहे। "यार तूने शेरे को देखा था ?"

"हां" उसने उसी तरह कांपते हुए जवाब दिया, "मिरज़े ख़ुदा की क़सम उसकी आंखों में ख़ून उतरा हुआ था और उसके बाजुओं की मछलियां तड़प रही थीं। मैंने ख़ुद देखा है। फिर वह उठकर बाहर गया था। मैंने वहीं से अनुमान लगा लिया था कि आज कुछ होकर रहेगा।"

मेरे आगे मिस्कीना लंबे डग भरता जा रहा था। उसके कीचड़ में चलने से 'पचाक', 'पचाक' की आवाज़ के साथ छींटे मेरे कंधों से घुटनों तक मिट्टी का लेप कर रहे थे जिसे सुरमे-सिलाई वाली बारिश की तेज़ धार उखाड़ रही थी।

मिस्कीना हुजरे को छोड़कर उस कच्चे रास्ते पर पड़ गया जो बरसाती नाले के किनारे खड़े शहतूतों के झुंड के नीचे से निकलकर जरनैली सड़क तक जाता था।

"मिरज़े पारसाल इन्हीं दिनों में शेरे की बहन का उधाला हुआ था। ताजे बाजे वालों ने लंबी कबड्डी में भी मार खाई थी और नाक भी कटवा बैठे थे लेकिन यार इस साल ताजे बाजिए तैयारी के साथ आए हैं। मुझे लगता है कामे अपनी औक़ात

भूल गए—शेरा अपनी बहन के उधाले का बदला लेगा।"

मैंने चलते हुए ज़ोर का हुंकारा भरा।

अभी हम जरनेली सड़क तक नहीं चढ़े थे कि ऊपर-तले 'ठाह' 'ऊह' की आवाज़ें चारों ओर जमे हुए अंधकार को चीरती हुई निकल गईं। यह सांगी उस्ताद के हाथ में पकड़े हुए कोड़े की आवाज़ नहीं थी, यूं लगता था जैसे तमंचा चल गया हो।

"मिरज़े नक्काल छोकरों के कूल्हों का कमाल देखा हर ओर 'ठाह' 'ठाह' करा दी ना ?" आगे चलते हुए मिस्कीने ने स्पष्टीकरण किया।

"यार कहीं गड़बड़ तो नहीं हो गई। यह तमंचे की आवाज़ लगती थी।"

"मुमकिन है, लेकिन नहीं यार, लड़ाई की बुनियाद पड़ते हुए भी देर लगती है।"

"बुनियाद काहे की ? कोई गुंजाइश रह भी गई है ?"

"कुछ पता नहीं चल रहा यार। आज हम समझ रहे थे अस्र का समय होगा पर पता चला शाम हो गई, अजानें हमने नहीं सुनीं। घर में अभी कुछ देर पहले सूरज डूबा है—देखी-भाली चीज़ें भी आज कुछ ऊपरी नज़र आ रही हैं।"

मिस्कीना चुप था।

हम दोनों जरनेली सड़क तक आकर छोटी पुलिया के नीचे बैठ गए और चुप का कुहरा हर ओर फैलता गया। पुलिया के नीचे बहते पानी के शोर में दूर से आती डूबती-उभरती ढोल की थाप सुनाई दे रही थी।

हमें वहां बैठे-बैठे ज़माने बीत गए। एक समय आया कि ढोलक की थाप अपने सुर बिगाड़ बैठी और कंकड़ियों से टकराते पानी की सरगम रह गई। फिर पुलिया के दोनों सिरे एक लम्हे को रोशन हुए और सामने दरबार के ऊंचे ध्वजा पताका के पीछे बिजली लहराई और गांव की ओर से आते कच्चे रास्ते पर सरपट आती हुई स्याह घोड़ी एक लम्हे को हम दोनों की नज़रों में ठहर गई।

मैंने देखा घोड़ी पर फाटदार कुरते वाला आगे को झुका हुआ था और उसकी कमर में पीछे से आयी हुई एक गोरी बांह लिपटी थी। मेरे ख़्याल की तस्दीक़ मिस्कीने ने कर दी। शेरे के पीछे लिशकती हुई स्याह घोड़ी पर लहराते हुए फाटदार कुरते के साथ जमी हुई गोरी बांह को हम दोनों नहीं पहचान पाए थे।

जरनेली सड़क के ऊपर आ जाने से ताजे-बाजे को जाने वाले रास्ते पर घोड़ी की टापों के साथ उठती हुई चिनगारियां हम दोनों ने देखीं। फाटदार कुरते पर सख़्ती से लिपटी गोरी बांह वाली गदराई हुई देह को संभाले शेरा हवा हो गया था। उसकी स्याह घोड़ी के पांव में कमानी लगी हुई थी और लहराता हुआ फाटदार कुरता झंडा बनकर यूं ऊपर उठा था जैसे चारों दिशाओं में फैले हुए आसमान के बादलों के झूलते हुए तंबू को रस्सों समेत उखाड़ फेंकेगा।

हमने जरनेली सड़क की पुलिया के नीचे एक उम्र गुज़ारी थी। मैंने मिस्कीने के सिर पर चमकते हुए चांदी बालों को छुआ।

''यार मिस्कीने—हम भी बूढ़े हो गए।'' वह शैतानी हंसी हंसता रहा।

सड़क पर दूर जाती चिंगारियां घुप अंधेरे में लुप्त हो गई थीं। हम अपनी झुकी हुई कमरों पर हाथों का सहारा लिए सिर पर चांदी का बोझ संभाले, पिंडलियों तक कीचड़ से होते, गांव को जाने वाले रास्ते पर हो लिए।

अगले दिन गांव में जीवन नित्य-नियम के अनुसार था। हमने किसी से भी रात के उधाले की बात नहीं सुनी। किसी ने यह बताया कि मिरज़ों के ललकारों का ताजे बाजे वालों ने कोई जवाब नहीं दिया। शेरा अपने घुटनों में सिर दिए बैठा रहा। निर्लज्ज क्या जवाब देंगे।

मैंने अपनी बरफ भवें ऊपर उठाईं और धुंधलाती हुई आंखों से मिस्कीने की ओर देखा, ''मिस्कीने यह लड़के क्या कहते हैं।''

''मिरज़े, यह कभी-कभी होता है कि बाहर हर ओर दोपहर हो और हम समझें शामें पड़ गईं।'' मिस्कीने ने ठहरी हुई आवाज़ में जवाब दिया और सबको चुप लग गई।

नींद में चलने वाला लड़का

बड़े दिन की बात है।

दरिया के साथ-साथ दूर तक फैली हुई आबादी गहरी नींद में डूबी हुई थी। पच्छिम से चली हुई नर्म कदम हवा का रेला खामोश गलियों में दोनों तरफ़ से झुके हुए सरकंडों से सिर मारता विलाप करता हुआ गुज़र रहा था। यूं लगता था जैसे आबादी में सन्नाटा फिर गया हो।

पूरी आबादी में सिर्फ़ एक था जो सोते में भी हवा के बैन सुन लिया करता था। उसका चांद से एक हार्दिक संबंध था। वह प्रायः रातों में आसमान पर चलते सितारों की चालें गिनता। वह जागते में सोया रहता और सोते में जागता था।

और यह बड़े दिन की बात है।

अपने तकिए वाले पलंग पर वो बेख़बर सो रहा था कि सोते में उसने हवा की सिसकी सुनी। कमरे में नीचे दरी पर उसकी दो बहनें और ज़रा हटकर तख़्तपोश पर मां गहरी नींद सोई थीं। बराबर के कमरे में उसकी फूफियां और एक चाची नवाड़ी पलंगों पर जिस करवट लेटी थीं वहीं रह गई थीं।

लड़कियों को उनके घर से उठे अभी कुछ ज़्यादा देर नहीं हुई थी। उस कमरे में जहां वह सो रहा था, कुछ ही देर पहले उसे मेंहदी लगाई गई थी और वह लड़कियों की भीड़ के बीच बेंत की कुर्सी पर बैठा रहा था।

अब रात धीरे-धीरे बीत रही थी और हर तरफ़ नींद का राज था। वह धीरे-धीरे उठा जैसे सब जागते में उठते हैं, उसने झुककर चप्पलें पहनीं और दरवाज़ा खोलकर आंगन में निकल आया। उस वक़्त आंगन की दीवार के साथ जुड़कर खड़ी नकायन में से ज़र्द चांद ने उसे झांका था।

वह गहरी नींद में था। उसकी आंखें मुंदी हुई थीं। उसके दाएं बाज़ू की कलाई में सुर्ख़ 'गाना' (कंकण) झूल रहा था जिस पर उसने कसकर रूमाल बांध दिया था। उसके चमकदार लम्बे-काले बाल कंधों पर बिखरे हुए थे और उसके दूधिया कुर्ते

को ठंडी हवा धीरे-धीरे झुला रही थी। वह रोती-चीखती हवा के साथ आबादी से दरिया की ओर निकल आया।

उसे किसी ने नहीं देखा। वह इस तरह संभलकर चल रहा था जैसे पूरी तरह जाग रहा हो। फिर वह किश्तियों वाले पुल पर आ गया। चांद की ज़र्दी में मुर्दा रंग की किश्तियां तेज़ पानी पर हिलकोरे ले रही थीं। दरिया का चमकीला पानी दूर-दूर तक पथरीले किनारों से टकराकर झाग उगल रहा था। वह बहुत संभलकर क़दम रखता हुआ दरिया पार कर गया। अब वह उस पथरीले रास्ते पर हो लिया था जो सीधा मुग़लों की आबादी की ओर निकल जाता है।

नर्म-क़दम हवा उसके पीछे सहज-सहज चली आई थी। सामने पथरीला रास्ता जर्द चांदनी में नहाया हुआ था। तिड़की हुई चट्टानों में से होता हुआ यह रास्ता ढक्की पार करके सीधा मुग़ल मेकों की हवेली तक जाता था। हवेली के बड़े दरवाज़े पर जिसके ऊपर उठती और फैलती हुई डाटें दोनों तरफ़ सुर्ख पत्थरों की बड़ी चौकियों पर ठहरी हुई थीं।

बहती हुई ठंडी हवा चौकियों तक उठ आई थी।

मुग़लों के बड़े हुजरों से लगी मस्जिद में अभी कुछ देर पहले वज़ू करने वालों के क़दमों की आहट थी। उनके कपड़ों की सरसराहट और कुल्ली के गिरते हुए पानी की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी लेकिन अब बहुत थोड़े से वक़्त के लिए दरिया की ओर से आई हुई हवा ने सब कुछ ढांप लिया था। हवेली के गिर्दागिर्द पूरी आबादी पर चांद की मूक जर्दी फैली हुई थी। और गलियों में अंधेरा लोटें ले रहा था।

जाने कितनी देर बाद गली के उस किनारे से मटियाले अंधेरे में रास्ता बनाता, खट-खट करता हमदा भिश्ती प्रकट हुआ। उसके आगे-आगे गधे की पीठ पर ख़ाली मश्कें दोनों तरफ़ झूल रहे हैं। हट-हट की आवाज़ के साथ गोल पत्थरों पर संभलकर क़दम रखता लाठी टेकता वह एक पल के लिए मस्जिद के सामने ठहर गया। उसने आंगन की सुनगुन ली। फिर आगे बढ़ गया। वह जहां अभी-अभी रुका है, मस्जिद के दरवाज़े के साथ पत्थर की बड़ी सिल पर पानी की टंकी रखी हुई है जिसके नीचे की रिक्ति बाहर गली के दरख़्तों के तनों और जड़ों से भरी होती है। हमदा अपने अगले फेरे में इस काठ-कबाड़ को दियासिलाई दिखा जाएगा।

गली के दूसरे सिरे पर उसके ग़ायब होते ही मस्जिद से कांपती आवाज़ में फ़ज्र (प्रातः काल) की अज़ान हर तरफ़ फैलने का यत्न करती हुई उभरी। अब केवल तहारत (पवित्र) करने वालों की मद्धम मिनमिनाहट और गिरते हुए पानी का शोर रह गया।

बड़े हुजरे के आंगन में अस्त-व्यस्त बिछी हुई खाटों पर चादरें तनी हुई हैं। आंगन में चिलम की राख उड़ी हुई है और सामने बाज़ वाले कमरे के बीच एक

पंक्ति में बड़े गोश्त के करवे आधे ज़मीन में दबे हुए हैं। ज़रा हटकर चावल दम हुए रखे हैं और करीब ही थड़े पर घुटनों को छाती में दबाए शैफ़ा नाई मुंह खोले पड़ा है।

यह सब देर तक इसी तरह रहा। फिर हवेली का बड़ा दरवाज़ा अपने विशिष्ट शोर के साथ खुलता चला गया। जब बड़े मिर्ज़ा ने खंखारकर गला साफ किया तो हुजरे में तनी हुई चादरें सहसा सिमटी हैं और शैफ़ा नाई उठकर थड़े पर बुत बन गया है। उस वक्त खुले में चांद अपनी ज़र्दी समेट रहा था।

बड़े मिर्ज़ा ने एक हाथ से हुजरे की चौखट को थाम रखा था और दूसरे हाथ से वज़ू सुखा रहे थे। फिर वे उसी तरह शिकरां वाली राहदारी से होते हुए बाज़ वाली कोठड़ी में चले गए।

पिछले कई दिनों से हवेली में शादी का हंगामा था। आज तीसरे पहर तक मुग़ल बिरादरी और आसपास की आबादी का खाना निपटाना था। बारात के पहुंचने का वक़्त तीसरे पहर की नमाज़ के बाद का था। मुंह अंधेरे बड़े मिर्ज़ा के आगमन के साथ ही हुजरे में बारात के स्वागत की तैयारियां शुरू हो गई थीं। दालान में छोलदारियों के नीचे दरियां बिछाकर दायरे में तकियों वाले नवाड़ी पलंगों को जगह दी गई। बड़े मिर्ज़ा से यह पूछना बाकी था कि बारात के आगमन पर दूल्हा के बैठने और निकाह के लिए कौन-सी जगह उचित रहेगी लेकिन वे बाज़ वाली कोठड़ी में थे।

मर्दाने में काम के शोर के साथ ही हवेली से ढोलक की घुटी-घुटी आवाज़ ने सिर उठाया। लड़कियां-बालियां दो-एक छपाके मुंह पर मारते हुए पूरे घर में हिनहिनाती हुई फैल गईं। सुबह के नाश्ते में चाय की नीली केतलियों के साथ ज्वार की रोटी आ गई।

अभी दुल्हन रानी को संभालने वाली सहेलियों की बड़ी संख्या आना बाकी थी। छोटी लड़कियों ने माड़ी पर खड़े-खड़े जरनेली सड़क पर रंग-बिरंगे तांगों के आगमन की घोषणा कर दी। हवेली से बच्चों का एक रेला जरनेली सड़क की तरफ़ बढ़ा। वहां सड़क के साथ-साथ दो कोस पर से दरिया का पानी तड़प-तड़पकर किनारों से ऊपर उठ रहा था।

बच्चे पथरीली ढलवान पर उठते-गिरते तांगों के ढकी की तराई तक पहुंचने से पहले वहां पहुंच गए। तांगा रुकता, कोचवान उतर कर घोड़ी की लगाम हाथ में थामे दूसरी तरफ़ मुंह फेरकर खड़ा हो जाता। तांगे के इर्द-गिर्द लिपटी हुई चादरें खुलतीं, ज़नाना सवारियां सफ़ेद चादरों में लिपटी राह पर हो जातीं। तब कोचवान मुड़कर तांगे का रुख़ करता। छोटे मेहमानों के स्वागत में मग्न थे।

संभालने वाली सहेलियों में से कुछ दरिया पार से भी आ रही थीं। वे एक छोटे से रंगीन बजरे में ठुंसी हुई थीं। देखते ही देखते चौकड़ियां भरती हिरनियों की

यह डार कहकहों की फुलझड़ियां छोड़ती, एक-दूसरे को चुटकियां काटती जरनैली सड़क पर आ धमकी और कुलांचें भरती ढकी पार कर गई। शोरशराबा करते बच्चे उनसे बहुत पीछे रह गए थे। हिरनियों की इस डार ने हवेली के निकट पहुंचकर विदाई के गीत में आवाज़ मिलाई फिर मधुर कहकहों का झरना फूटा। सहसा बड़े मिर्ज़ा तड़पकर सामने आए और हुजरे से ही चिंघाड़कर हुक्म दिया कि ज़नाने का दरवाज़ा गिरा दिया जाए।

''कंवारियों के यह चाले नहीं हैं'' उनकी त्यौरियां चढ़ी हुई थीं। विदाई की बात सुनकर वे थर-थर कांपने लगे थे, फिर वे बाजू वाली कोठड़ी की तरफ मुड़ गए थे।

हवेली की फसील पर अंदर की औरतों और लड़कियों ने चुप साध रखी थी। नीचे ज़नाने में ढोलक वाले कमरे की फर्शी दरी पर खुले शृंगारदान के बराबर दुल्हन अकेली रह गई थी। बाहर गली में पार से आई हुई मेहमान लड़कियां शर्म से नहाई हुई अपनी एड़ी की जगह में डूब मरना चाहती थीं। यह हंगामा बहुत देर तक रहा।

दुल्हन अकेली थी। वह अपने कमरे से हवेली की पिछली ओर खुलने वाली बाल्कनी में आ बैठी। नीचे दूर तक चट्टानों की तराई में सब्ज़े की तहें जमी हुई थीं जिनके बीच पहाड़ी सोतों का साफ पानी एक पतली लकीर की शक्ल में चलता था। उसने नज़र भरकर नीचे देखा। फिर हाथ-दर्पण में अपने पूरे शरीर का निरीक्षण किया।

नोकवाली तिल्लेदार जूतियों को ढांपे हुए कुली की शलवार जिसकी धारियां ऊपर उठकर गाच की कमीज में गुम हो गई थीं। गले में झमझमी का दुपट्टा ठहर नहीं रहा था। माथे पर दोनों तरफ सुनहरी तावीज़, जिनके पीछे बारीक गुंधी हुई मीढ़ियों को कन-फूलों ने ढांप रखा था। नाक में एक तरफ चारगुल का फूल और सामने होंठों पर सोने की बुलाकड़ी, गले में सुर्ख़ गानी कानों में मुंदरे और मुंदरों तक आई हुई लखतेई, उंगलियों में चांदी के छल्ले जिनमें छोटे घुंघरू हरदम बेचैन थे। अभी चांदी के चूड़े गोरे बाजुओं में लपेटने बाकी थे। उनके साथ ही अंदर दरी पर सुर्ख फुमन वाले बाजूबंद और अंगूठों के छल्ले और बराबर की उंगलियों की सुथियां पड़ी रह गई थीं।

वह बहुत देर तक वहीं स्थिर और मौन बैठी रही, एकाएक उसे यों लगा जैसे नीचे चट्टानों की तराई में सब्ज़े की चादर पर किसी ने करवट ली है। यह कौन था जो इतने बड़े हंगामे से कटकर यों शांति के साथ लेटा था।

नीचे सब्जे का गहरा साया था जिसमें मंद गति हवा उसका दूधिया कुर्ता धीरे-धीरे झुला रही थी। उसके चमकदार लम्बे काले बाल कंधों पर फैले हुए थे। वह एक कुंज में करवट लिए दुनिया-जहान से बेखबर था।

वह बहुत देर तक उसे तकती रही। फिर खामोशी से उठकर ढोलक वाले

कमरे में आ बैठी। अब बड़े मिर्ज़ा किसी तरह मान गए थे। बड़े दरवाज़े की खिड़की खुलते ही मेहमान लड़कियां शर्म में डूबी, सिर झुकाए अंदर ज़नाने में कूद गईं। आंगन और दालान में तख़्तपोश और मसहरियों पर बैठी बूढ़ियों के सिर जुड़े हुए थे।

"हाय नी—मिर्ज़ा को यों नहीं करना था।"

"हाय नी ख़्वारे—दो घड़ी हंस-बोल लिया तो कौन-सी आफत टूट पड़ी थी।"

"नी मैं कहती हूं मिर्ज़ा बेटियों को मुसल्ले पर बिठाएगा ?"

दालान, कोठड़ियों और माड़ी की चौकियों मसहरियों और मख़मल के फ़र्श पर हर तरफ़ सिर जुड़े हुए थे। दुल्हन के कमरे में सहेलियां घुटनों में सिर देकर बैठ गईं। हर तरफ शोक छाया हुआ था। मर्दाने में और हवेली के अंदर आंगन, बरामदों और दालान में तिल धरने की जगह न थी। चार-चार कोस की आबादी टूट पड़ी थी। दोनों तरफ़ बान की खाटों को जोड़कर चौकियां बना दी गई थीं और ज़नाने में खलबली मची हुई थी। फिर मिट्टी की कोरी कटोरियों में पुलाव और करवे के गोश्त की परोसाई शुरू हुई। चार-चार की टुकड़ियों में चावलों और गोश्त के थाल तक्सीम होते गए और उनके पीछे चादरों को थामे हुए लड़के जिनमें ख़मीरी रोटियों के अंबार लगे थे, खाने वालों को पानी के भरे हुए कूज़े भूल गए। ज़नाने में बार-बार पिटते और रोते हुए बच्चों का कोलाहल खाना समाप्त हो जाने के बहुत बाद तक रहा।

दोनों तरफ़ की जब सारी बिरादरी और चार-चार कोस से आए हुए छोटे-बड़े खाने से फ़ारिग़ हुए तो तीसरा पहर हो चला था। संभव है दरिया पार बारातियों के घरों से निकलने का हौका भी हो चुका हो।

जब मस्जिद से मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाला) की कांपती हुई आवाज़ उभरी तो आंगन में चारपाइयां खाली करवाकर दहेज लगा दिया गया। फिर मर्दाने से दुल्हन के भाई को बुलाया गया। उसने दुल्हन के कमरे में जाकर उसकी ओढ़नी के चारों सिरों पर सात-सात कच्चे चावल बांध दिए और गर्दन लटकाए बाहर निकल गया।

बड़े मिर्ज़ा बाज़ वाली कोठड़ी में सुबह के गए नहीं निकले थे। इस दौरान आपने सिर्फ बूदे और कीमे को बुलवाया था। जिस घड़ी दोनों अपने कांधे की चादरों से पसीना पोंछते हुए बाहर निकले हैं, काला पट्टेदार सामने हो गया।

"बूदे मैंने बड़े मिर्ज़ा से यह पता करना था कि बारात के आगमन पर दूल्हा के बैठने के लिए कौन-सी जगह उचित रहेगी।"

बूदे ने कीमे की ओर देखा।

"पट्टेदार चाहे कुछ हो मुग़लों की इज़्ज़तें घरों से बाहर कदम नहीं धरतीं।"

उसके चेहरे पर शैतानी मुस्कराहट उभर आई थी।

"मिर्ज़े का हुक्म है जिस तरह बाज़ झपटता है ना बस उसी तरह झपट पड़ो। अच्छा पट्टेदार हम चले, अब वे आते ही होंगे।"

काला वहीं बैठ गया।

अब मर्दाने में छोलदारियों के नीचे लोग एक बार फिर इकट्ठे होने शुरू हुए थे।

ज़नाने में दुल्हन के कमरे से एक बार फिर ढोलक की आवाज़ उभरी थी। सहेलियां बड़ी बे-दिली के साथ नृत्य में दो-एक फेरे लेकर बैठ रही थीं। कमरे के वातावरण में घुटन बढ़ गई थी। सुर्ख अंगारा दुल्हन घुटनों में सिर दिए बैठी थी। लिपटी हुई गोरी बांहों में कोहनियों तक चढ़े हुए चांदी के चूड़े चमक रहे थे और उंगलियों में छल्ले जिनके घुंघरू हरदम बेचैन थे। उसकी नज़रें अपने पैरों के अंगूठों पर थीं। वह आगे को झुकी हुई थी और धीरे-धीरे कांप रही थी।

वह उसी तरह चुप बैठी रही थी और सामने सहेलियां बेदिली के साथ फेरे लेकर बैठ रही थीं। उस समय कमरे से जुड़ी बाल्कनी में नीला आसमान धीरे-धीरे धुंधला हो रहा था। उसने सहसा सिर उठाया।

"नी मेरे लिए विदाई का कोई गीत नहीं गाओगी। वह शेरों की छाती वाला नहीं आएगा क्या ?" उसने दोनों हाथों से अपना माथा पीट डाला।

हवेली में हर तरफ़ शोर मच गया। सब दुल्हन के कमरे की तरफ़ दौड़ीं।

"हुआ क्या है ?" आंगन में किसी ने पूछा।

"नी खवारे ! अब भी पूछती हो, हुआ क्या है ? बारात कहीं रह गई है और दूर-दूर तक कोई पता-निशान नहीं।"

अब बड़ी मुग़लानियां उठीं। चांदी की बालियों से लदे-फंदे कानों के पीछे चिकन के दुपट्टे उड़सती हुई।

"अरे यह क्यों नहीं सोचते कि खुद तो शहज़ादी बीवी समेत चार-चार घरों में डाल रखें, मुजरे कराएं, कोठों पर जाएं और जब बेटियां जवान हों तो उनके बर जहर देकर, बलवा कराके उठवा दें।"

वे ढीले कानों में बालियों को झुलातीं, कूल्हों पर दोनों हाथ टिकाए लड़कियों को समझाती-बुझातीं, बड़े मिर्ज़ा समेत पूरी बिरादरी को गालियां सुनातीं घड़ी भर में हांफकर बैठ गईं। हर तरफ़ खुसर-फुसर होने लगी।

इस हंगामे में पता ही न चला कि कब सूरज अस्त हो गया। बारात की कोई खबर न थी। हर तरफ़ व्याकुलता बढ़ने लगी। गैस के हंडे जलाकर ऊंचे स्थानों पर रख दिए गए। लड़कों की वह टोली जिन्हें मशालें देकर दरिया की ओर भेजा गया था, वापस लौट आई थी। बारात का पता निशान कहीं न था। ज़नाने में बड़ी मुग़लानियां व्याकुल होकर घूमने लगीं। तब सुर्ख-अंगारा दुल्हन भी उठी और धीरे-धीरे चलती बाल्कनी तक आ गई। उसके पीछे-पीछे सहेलियों का हुजूम था।

नीचे तंग घाटियों में घुप्प अंधेरा सांसें ले रहा था। हरियाली के तख़्त पर वह शेरों की छाती वाला अब भी सो रहा था और उसके दूधिया कुर्ते को नर्म हवा धीरे-धीरे झुला रही थी और वह एक कुंज में करवट लिए दुनिया-जहान से बेख़बर सो रहा था।

पगली

यह गर्मियों की एक दोपहर का किस्सा है।

सारा दिन तेज़ गर्म लू चलती रही थी। बस्ती की पेचदार गलियों में मिट्टी पगलाई फिरती थी और चील अंडा छोड़ गई थी।

ऐसे में उस भरी-पूरी आबादी में एक वही थी जो अपने घर से बाहर निकल आई थी। यह सब उसके नित्य नियम के विरुद्ध था लेकिन हुआ।

बस फिर क्या था एक हंगामा मच गया।

इस हंगामे की वजह क्या थी कुछ पता नहीं था। जो कुछ सुना है वह एक सांवला संतुलित कसा अस्तित्व था। उसकी हिरन जैसी आंखें, चौड़ा माथा, और लम्बी गर्दन की शोभा नज़रों में नहीं समाती थी। एक हिरनी थी हिरनी जो पूरी आबादी में चौकड़ियां भरती, दिलों की धड़कन भुलाती चारों ओर समा गई थी।

सब उसे देखकर जीते थे। उसके दम से सारा संसार सांस लेता था। उसका कहा कोई टाल नहीं सकता था। उसकी मर्ज़ी सब की मर्ज़ी थी लेकिन उसका अंत अच्छा नहीं हुआ। उसका सोलहवां साल था जब वह बदनाम हुई।

धान-पान सा राजा, जिसकी अभी केवल मसें भीगी थीं, जाने कितने समय से उसे आते-जाते, सबसे हंसते-बोलते देखता रहा था और उससे रहा न गया था।

और वह अपने घर से निकल आई थी।

उस चिलचिलाती धूप में राजा आगे बढ़ा। वह उससे कुछ कहना चाहता था और कह न सका था। गली वीरान थी और देखने वाला कोई न था लेकिन जाने कब और कैसे जैसे सबने उसे देख लिया।

मैंने बताया था वह चौकड़ियां भरती, दिलों की धड़कन भुलाती सारी आबादी में भरी हुई थी। उसका कहा कोई टाल नहीं सकता था। उसकी मर्ज़ी सबकी मर्ज़ी थी लेकिन उस दिन सबने उसे झुठला दिया।

उस दिन किसी ने उसकी नहीं सुनी। सब अपनी-अपनी कह रहे थे।

किसी ने कहा—"उनका रोज़ का मिलना-जुलना था।"

कीमे ने उसकी बात काटी, "तुम क्या जानो—जो कुछ इन पापी आंखों ने देखा है।"

फीके ने बात काटते हुए कहा, "क्यों भई ताजे ! सबको बता ही दूं ? जो गई रात को हुआ है ? हम दोनों तो मौके के गवाह हैं।"

बढ़ती हुई भीड़ के बीचोंबीच, वे दोनों अपराधियों की तरह बल्कि सबकी आंखों में आंखें डाले सीधे खड़े रहे थे लेकिन कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी और कोलाहल बढ़ता गया था।

फिर जाने क्या सोचकर राजा, एक तरफ़ को निकल भागा।

कसूर उसका भी नहीं था उसकी तो अभी केवल मसें भीगी थीं। उसके निकल भागते ही सबने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक-दूसरे को देखा।

कीमे ने फीके की हां में हां मिलाई और फीके की पुष्टि ताजे ने कर दी।

हुआ क्या था यह बात जानने की किसी को क्या पड़ी थी।

और यह कि उसका सोलहवां साल था जब वह बदनाम हुई थी। उसका कहा कोई टाल नहीं सकता था लेकिन उस दिन उसकी किसी ने न सुनी। वह अपनी एड़ी की जगह में डूब मरना चाहती थी।

फिर किसी ने उसे बाजू से पकड़ा और उसे घर तक छोड़ने आये लोगों की भीड़ थी जो साथ चली है।

उस रोज़ के बाद वह अपने घर के एक अंधेरे कोने का अंधेरा बनकर रह गई। फिर उसे किसी ने नहीं देखा।

उसके बग़ैर बस्ती सूनी थी। सारी आबादी तो उसे देखकर जीती थी। उसके दम से सारा जग सांस लेता था लेकिन जब इस बात का सबको एहसास हुआ तो वह अपने घर के एक अंधेरे कोने का अंधेरा बन चुकी थी।

कीमे, फीके और ताजे ने सिर जोड़े। तब राजा की ढुंढिया पिटी है। अब तक राजा कहां था ? छुपता-छुपाता जरनेली सड़क को चढ़ गया।

ज़माने बीत गए। उसका कुछ पता न चला।

बच्चों ने उससे नफ़रत करना अपने बड़ों से सीखा और बड़े-बूढ़े उससे घृणा की अभिव्यक्ति करते मुंह से कफ़ उड़ाते, ऊल-जलूल बकते उम्रों की ढलवान से नीचे उतर गए।

उसने किया ही कुछ ऐसा था कि सब हैरान थे। उसका अपराध अपने-परायों की समझ से बाहर था। सब सुनते थे और सन्न रह जाते थे पर जब सब गुस्से में आकर उठे थे तो वह गायब था। ढुंढिया पड़ी, नीचे की ज़मीन ऊपर और ऊपर की नीचे कर दी गई। उसकी कहीं ख़बर न मिली।

ज़माने बीत गए। लोग भूल-भाल गए।

एक दिन पता चला कि राजा गुज़र गया--खून थूकता हुआ।

इसकी मौत की खबर ने नई पीढ़ी के ज़ेहनों में उस भूली-बिसरी याद को करवट दी लेकिन उन्हें उस गए वक़्तों के किस्से में क्या रुचि हो सकती थी।

इक्का-दुक्का पुराने लोगों ने राजा की मौत का सुना और एक-दूसरे से पूछा, "असल किस्सा क्या था ?"

कोई ऐसा न था जो आंखों देखी कहता। बस एक दोपहर का किस्सा था जब कीमे, फीके और ताजे ने सिर जोड़े थे और यह कि कोलाहल जड़ें पकड़ गया था, फिर लोग इकट्ठे होते गए और बस...।

किसी ने उस सांवले संतुलित कसे हुए अस्तित्व को याद किया जिसे देखकर सारा जग सांस लेता था।

उधर अपने घर के अंधेरे कोने में उसने भी सुना।

गुज़र गया—खून थूकता हुआ।

तब वह हड्डियों का पिंजर, और झुर्रियों की मुट्ठी छाती पीटती और अपने दोनों हाथों से चेहरा पीटती हुई बाहर निकल आई।

उसने गली में निकलकर हर आने-जाने वाले को रोककर बताया।

"लोगो ! मेरा सोलहवां साल था जब वह नामर्द, मुझे पूरी आबादी के बीच अकेला छोड़कर भाग निकला था। आखिर गुज़र गया—खून थूकता हुआ।"

कौन गुज़र गया ?

नई पीढ़ी उसके बारे में कुछ भी तो नहीं जानती थी। उन्होंने तो उससे नफ़रत करना अपने बड़ों से सीखा था और बड़े अपनी उम्र की ढलवान से नीचे उतर गए थे।

अब वह अंधेरे कोने का अंधेरा, हड्डियों का एक पिंजर और झुर्रियों की मुट्ठी आबादी में हर तरफ़ कहकहे लगाती फिरती है। उससे बदबू के भपके उठते हैं। जिस चौखट पर बैठ जाती है, घर उजाड़कर रख देती है।

कौन है जो उसका सामना करे ?

गंदगी फांकती और जोहड़ का बदबूदार गंदला पानी पीती है और कहती है, "गंदी आत्मा तो दुनिया से उठ गई अब गंदगी कैसी ?"

बस्ती उजड़कर रह गई है।

कीमे, फीके और ताजे के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही हैं और वे एक बार फिर सिर जोड़े हुए हैं।

फेरीवाला

बाज़ार हर प्रकार की व्यापारिक जिंस से पटा पड़ा था। सौदागर मोल-तोल में व्यस्त थे। ऐसे में हारून की चहेती बीवी ज़ुबैदा अपनी दासियों के साथ ख़रीदारी करती वहां से गुज़री तो क्या देखती है कि बहलोल, बीच बाज़ार में बैठा मिट्टी में घरौंदे बना रहा है। ज़ुबैदा यह देखकर बहुत हैरान हुई और सवाल किया कि "दीवाने ! कहो तुमने ज़िन्दगी को कैसा पाया ? कुछ हमें भी समझाओ।"

बहलोल अपने काम में डूबा हुआ था, उसने कोई ध्यान नहीं दिया।

ज़ुबैदा ने सवाल दोहराया, "ज़िन्दगी क्या है ?"

बहलोल ने अपने सामने धरी मिट्टी की ढेरी की ओर इशारा किया और बोला, "क्यों बेकार समय नष्ट करती हो, जब मौत आएगी तो स्वयं जान लोगी कि वह क्या है और ज़िन्दगी की हक़ीक़त क्या है।"

ज़ुबैदा ने बड़े गर्व से कहा, "दीवाने ! तुमसे कोई जवाब नहीं बन पड़ा—कहो, भरे बाज़ार में अब यह क्या खेल खेलते हो ?"

बहलोल ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया : "मलिका ! जन्नत के महल बेच रहा हूं। लेना है तो बोलो।"

ज़ुबैदा ने पूछा, "कितने का बेचोगे ?"

दीवाना अपनी सफ़ेद मूंछों में मुस्कराया और कहने लगा : "तुम पांच लाख दीनार साथ लाई हो। हम मोल-तोल नहीं करते, अपनी चादर बिछाओ।"

ज़ुबैदा ने चादर बिछा दी और पांच लाख दीनार के बदले मुट्ठी भर मिट्टी उठा ले गई।

उस दिन रात गए तक बहलोल को निर्धनों ने घेरे रखा और जब दीवाना अपना दामन झाड़कर वहां से उठा है तो फ़ज्र (प्रातःकाल) की अज़ानें हो रही थीं।

कथावाचक का बयान है कि हारून उर रशीद ने उस रात को एक सपना देखा कि एक बड़ा महल है जिसके आस-पास दूध और शहद की नहरें बहती हैं

और पाईं बाग़ में सुरीले परिन्दों के साथ ज़ुबैदा चहकती फिरती है, पर जब हारून ने महल के अन्दर जाने की इच्छा प्रकट की तो दरबान ने उसे सख़्ती से रोक दिया। वह बहुत गिड़गिड़ाया कि "देखो मैं मुसलमानों का ख़लीफ़ा, कब्रस का विजेता और अग़्लिया ख़ानदान की मुस्लिम सल्तनत का बानी (संस्थापक) हूं। महान क़ैसरे-रूम से मैंने राज-कर वसूल किया। तमाम मुस्लिम शासकों में ऐसा कोई है जो मेरी बराबरी करे ?" लेकिन दरबान ने उसकी एक न सुनी।

आंख खुली तो वह बहुत हतोत्साहित था और फ़ज्र की नमाज़ हो चुकी थी। उसने अपना सपना ज़ुबैदा को सुनाया तो वह खिलखिलाकर हंस दी और पिछले दिन पेश आने वाली घटना सविस्तार सुनाई।

कथावाचक का कहना है कि हारून तड़पकर उठा, दस लाख दीनार बांधे और भेस बदलकर बाज़ार की ओर निकल गया। दीवाने ने अभी कुछ ही देर पहले अपनी दुकान सजाई थी और बीच बाज़ार में बैठा मिट्टी गूंध रहा था। हारून ने घुटनों के बल होकर अर्ज़ किया : "हज़ूर एक घर चाहिए। किस भाव बिकता है ?'

बहलोल ने सिर झुकाए रखा और कहा, "तेरे सारे शाही राज-पाठ के बदले दे सकता हूं एक घर, बोल लेगा ?"

हारून ने कहा : "लेकिन हज़ूर, कल तो आपने बहुत सस्ता बेच दिया।"

दीवाना मुस्कराया और बोला, "हां यह सच है, लेकिन ज़ुबैदा ख़ातून ने तो मेरे कहे पर विश्वास किया और माल ख़रीदा। उसे क्या ख़बर कि उधर मिलेगा भी या नहीं। तुमने तो देख लिया कि उसे मिल गया, कहो इसीलिए मेरे पास दौड़े आए हो–"

हारून निरुत्तर हो गया और वहां से उठ आया।

कथावाचक कहता है कि समय अपने आपको दोहराता रहेगा, बहलोल दीवाना दूसरी बार भी एक फेरी वाले के रूप में प्रकट हुआ, पर एक ऐसे क्षेत्र में जिसकी चरागाहों में विदेशी पशु चरते थे, जिसका वातावरण विदेशियों ने हथिया लिया था और जिसके पानियों पर पराई नौकाएं चल रही थीं। दीवाना उस ओर जा निकला, जहां मलमल बुनने वाली कुशल उंगलियां हाथों से काट दी गई थीं और जीवन की सारी व्यवस्था भीख में मिलने वाले क़र्ज़ों पर खड़ी थी।

कोई नहीं जानता कि नवागंतुक कौन है और कहां से आया है, बस अनुमान लगाए जा रहे थे और लोगों ने सिर जोड़ रखे थे।

वह जिस गली-मुहल्ले से गुज़रता, जीवन की प्रचलित व्यवस्था उथल-पुथल हो जाती। उसके यूं अचानक प्रकट होने से उस धरती के व्यस्त बाज़ारों और व्यापारिक केन्द्रों, औद्योगिक संस्थाओं पर हर समय छाया हुआ स्नायु-घातक तनाव मान्द पड़ता गया और एक ही ढर्रे पर व्यस्त रहने वाले पीढ़ी दर पीढ़ी कुचले हुए मज़दूरों ने जैसे एक नया जन्म लिया। एक ज़माना गुज़र जाने के बाद उन्होंने ख़ुद को और

एक-दूसरे को महसूस किया और यह बिल्कुल ऐसा ही था जैसे सुने हुए ग्रामोफ़ोन रिकार्ड को मुद्दत बाद सुना जाए और इसमें अर्थतत्व की परतें नए सिरे से खुलें।

फेरी वाला, सिर झुकाए अपनी दुर्दशाग्रस्त रेढ़ी पर भुरभुरी मिट्टी सजाए निकलता। उसके पीछे लोगों की एक बड़ी भीड़ होती और फिर देखते ही देखते चारों तरफ़ से लोग उसकी ओर खिंचते चले आते। गलियां और बाज़ार, दुकानें और दफ़्तर ख़ाली हो जाते, ट्रैफ़िक जाम हो जाती और फेरी वाला आगे बढ़ने का रास्ता न पाकर रुक जाता और पुकारता, "मोमिनो जल्दी करो—जन्नत के महल बिकाऊ हैं।"

वह कुछ देर सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहता और फिर अपनी चौड़ी हथेलियों और कुशल उंगलियों के साथ रेढ़ी पर धरी भुरभुरी मिट्टी के घरौंदे बनाना शुरू कर देता। तब लोगों की बुरी तरह उमड़ती हुई भीड़ में मिट्टी की कीमत लगनी शुरू हो जाती। और यूं देखते ही देखते एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर बोली लगाने वाले अपने नोटों से भरे ब्रीफ़केस रेढ़ी पर उलटते चले जाते। फेरी वाला ख़ाली ब्रीफ़केसों में मुट्ठी भर मिट्टी डालता जाता और रेढ़ी पर मिट्टी की जगह नोटों का ढेर ले लेता। फेरी वाले का सारा माल मिनटों में ख़त्म हो जाता और वह जब नोटों से लदी-फंदी रेढ़ी के साथ उस बड़ी भीड़ में रास्ता बनाते हुए निकलता तो उसकी कुशल उंगलियों के साथ उठते हुए नोट काग़ज़ी हवाई-जहाज़ों की तरह चारों तरफ़ उड़ने लगते, यहां तक कि रेढ़ी ख़ाली हो जाती और लोग झोलियां भर लेते।

सब कुछ वहीं लुटाकर फेरी वाला ज़रा सिर उठाकर अपनी कमज़ोर आवाज़ में क्षमा चाहता : "सारा माल ख़त्म हो गया जी—ज़िन्दगी रही तो आपका सेवक फिर हाज़िरे-ख़िदमत होगा।"

यह सुनकर भीड़ के कदम वहीं थम जाते, जैसे पांव में जंजीर पड़ गई हो, और वह भीड़ में से रास्ता बनाता, तेज़-तेज़ कदम उठाता निर्जन गलियों में लुप्त हो जाता।

फेरी वाले का यही नित्य-नियम था। वह मिट्टी का ढेर साथ लाता, उसे सोना बनाता और दोनों हाथ लुटाने के बाद ख़ाली रेढ़ी के साथ पलट जाता।

वह कौन था ? कहां से आया था ? कोई नहीं जानता था बस अनुमान लगाए जा रहे थे और लोगों ने सिर जोड़ रखे थे।

राष्ट्रीय समाचार-पत्रों ने मुख्य शीर्ष दिए, विशेष अतिरिक्त अंक निकाले, तात्पर्य यह जितने मुंह उतनी बातें। वह कभी एक शहर में प्रकट होता तो कभी दूसरे में। उसके प्रकटन की तारीख़ और कोई निश्चित प्रोग्राम न था। बस वह आता और भरी-पूरी आबादियों में ज़िन्दगी के प्रचलित ढर्रे को उलट-पलट करके निकल जाता।

फेरी वाले के फेरे के बाद फाइनैन्स कंपनियों के ख़ज़ांचियों और बैंक मैनेजरों की जवाब तलबियां होतीं; सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और निजी संस्थाओं के लेखा

अधिकारी निलंबित होते पर जब वह आता तो सब के सब बिना सोचे-समझे विवश होकर उसी की ओर लपकते और जो कुछ उनके पास होता भेंट कर देते। पूंजीपति अपना सिर पीटकर रह गए। काला धंधा करने वाले कंगाल हो गए। भूखों को पेट भर खाना नसीब हुआ और ग़रीब घरों की बेटियों की डोलियां धूम-धाम से उठने लगीं। तात्पर्य यह कि क्या नहीं हुआ।

बड़ी हाहाकार मची, फेरी वाले की गिरफ़्तारी के वारंट जारी हुए, उसके सिर की क़ीमत रखी गई पर मामला ज्यों का त्यों रहा। सख़्त प्रबंध के बावजूद वह सहसा प्रकट होता, मिट्टी की मुट्ठियां भर-भर बांटता, नोटों से भरे ब्रीफ़केस ख़ाली कराता और अपनी सफ़ेद मूंछों में मुस्कराता : "सारा माल ख़त्म हो गया जी।"

जिन अख़बारों में उसकी गिरफ़्तारी के बारे में जहाज़ी साइज़ के विज्ञापन प्रकाशित होते, उन्हीं में एक और छोटा-सा विज्ञापन जाने कैसे सम्मिलित हो जाता : "मोमिनो जल्दी करो–"

यह विज्ञापन क्या छपता, समाचार-पत्रों का प्रशासन विभाग कठिनाई में फंस जाता। उनकी अक्षमता पर पूछ-ताछ होती, कला-संपादक और कम्पोज़ीटर खड़े-खड़े निलंबित कर दिए जाते लेकिन वह एक पंक्ति का विज्ञापन जाने कैसे छप जाता।

अब धीरे-धीरे एक तेज़ और मौन परिवर्तन का एहसास जड़ पकड़ने लगा। विराट सड़कों पर मरकरी बल्ब बुझकर रह गए। सिनेमा-घर, नाट्यशाला और नाइट क्लब उजड़ गए और समन्दरों में विदेशी माल से लदे व्यापारिक बेड़े जहां थे वहीं रुक गए।

यह सब कुछ इतनी तेज़ी से हुआ कि राज-काज के अधिकारी भौंचक्के रह गए। अपर हाउस और लोअर हाउस की आपातकालीन सभाओं में विदेशी कर्मचारियों और लाभ उठाने वालों ने चीख़-चीख़कर आकाश सिर पर उठा लिया।

यह कैसे मुमकिन था...कथावाचक का बयान है कि ऐसे में देशी स्यानों को विदेशी प्रतिनिधियों के साथ सिर जोड़कर बैठना पड़ा। उनका मिल बैठना था कि कुछ दिनों बाद अचानक एक दिन प्रातःकाल राजधानी की एक व्यस्त सड़क पर फेरी वाला मुर्दा पाया गया। जब तक लोग जमा होते और शहर का शहर उमड़ता कर्मचारियों ने फेरी वाले का शव ठिकाने लगा दिया और उसकी टूटी-फूटी रेढ़ी नगरपालिका के अहाते में खड़ी अन्य रेढ़ियों में सम्मिलित कर दी।

अख़बार में विज्ञापन निकला : "मोमिनो जल्दी करो–"

लोगों ने विज्ञापन देखा, एक झुरझुरी ली, लेकिन नित्य-नियम के काम-धंधों ने उन्हें नए सिरे से अपनी लपेट में ले लिया।

बाबा नूर मुहम्मद का अंतिम कवित्त

मैं बच्चा था और हैरान रात-दिन थे।

मुझे उन सवालों का जवाब आज भी नहीं मिला जो उन दिनों मैंने शहर जाने वाले धूल समेटे हुए कच्चे रास्ते और उसकी दोनों ओर फैली कीकरों की पंक्तियों से पूछे थे। जवाब में हवेली की चारदीवारी मौन रही थी और सदर दरवाज़े की दोनों चौकियां मेरी तरह हैरान !

मैंने पूछा, यह हवाएं कहां से आती हैं ? यह रोशन दिनों के दरमियान ठहरी हुई रात आख़िर क्या है ?

आज मैं उन वक़्तों को याद करता हूं, अपने बढ़े हुए नाख़ूनों से आंखों में ठहरी हुई रात की दीवार को खुरचता हूं।

वह एक गहरी शाम थी जिसमें डुबकी लगाते हुए मैंने बाबे नूर मुहम्मद को देखा था। वह शाम थी, अपने ही ज़ोर में जंजीर कड़कड़ाती, अपने सामने वाले खुरों से ज़मीन उधेड़ती, धूल उड़ाती मस्ती में आई हुई शाम।

मैं शायद आपको पहले बता चुका हूं कि मैं बच्चा था और वह हैरान कर देने वाले रात-दिन थे। मैंने यह खरी हैरत चारों ओर चुनी हुई रात की दीवार में देखी है।

यह रात की दीवार और उस पर हैरत की मोटी तहों का लेप, जिसमें हर चीज़ का असल रूप उभरता है। दिन को तो हम सब नक़्क़ालों में घिरे रहते हैं। सामने की चीज़ें भी नज़रों से ओझल रहने की ख़ातिर स्वांग भरती हैं।

आज कहानीकार मिर्ज़ा हामिद बेग उस नेकों के हुजरे में इस क़िस्से का प्रारंभ कर बैठा है। हो सकता है यह कहानी भी असल कहानी की नकल हो, इसलिए कि यह क़िस्सा पुराना है और क़िस्से-कहानियां समय बीतने के साथ कुछ की कुछ हो जाती हैं।

हां तो मैं कह रहा था, उन दिनों मैं बच्चा था और वह हैरान कर देने वाले

रात-दिन थे। मैं नेकों के हुजरे में कच्चे फ़र्श पर फैली पुआल पर, कुहनियों के बल, सामने बान की चारपाई पर लेटे हुए बाबे नूर मुहम्मद के चार-बैते सुन रहा था। हुजरे में हर ओर बाबे की डूबती-उभरती आवाज़ भरी थी। और उसकी दाईं आंख से पानी की एक पतली लकीर उसकी नीचे टिकी हुई बांह की आस्तीन तक आ रही थी।

वह सुनता बहुत ऊंचा था, बदन के जोड़ उसे जवाब दे गए थे और आंखों में मोतिया उतर आया था। आठों पहर हुजरे में बान की झिलंगी खाट पर पड़ा कवित्त जोड़ता रहता।

उसका कोई नहीं था। उसकी बैठी हुई छत वाले कोठे के ठंडे आंगन में इंजीर का बूटा हमारे दिलों में धड़कता था और बात करते हुए, जब कभी उस ओर ख़्याल जाता, हमारे मुंह तक आई हुई बात गुलाबी लेसदार इंजीरों के साथ रिल-मिलकर कुछ की कुछ हो जाती।

मैं फिर भटक गया हूं। दरअसल बात हो रही थी आपकी तरह नेक लोगों के हुजरे की, जिसमें नीचे बिछे हुए पुआल पर मैं कुहनियों के बल लेटा हुआ, नूर मुहम्मद की थरथराती आवाज़ में चार-बैते सुन रहा था।

बाबे ने गाते-गाते अपने चोले के तने से दाईं आंख से उतरती पतली लकीर पोंछ डाली और कुछ समय चुप लेटकर छत की कड़ियां गिनता रहा, फिर कहने लगा : "मना छोड़ झूठे किस्सों को, मैं तुझे अपनी कहानी सुनाता हूं। यह मेरे जोड़े हुए कवित्त उसके सामने कुछ नहीं।"

मैंने ज़ोर से हुंकारा भरा।

"हां तो मना, ख़ुदा तेरी भली चार करे, छोटे होते का क़िस्सा है, मुझे लगी हुई थी भूख, पूरे चार वक़्तों से कुछ नहीं खाया था।"

मैंने बाबा को यहां टोक दिया। "क्यों बाबा—बिलकुल ऐसे ही जैसे आज चार वेला गुज़र गए ?"

बाबा चोले का तना दाईं आंख तक लाया, "हां ख़ुदा तुझे अच्छा बदला दे—पूरे चार वेले बीत गए और खील तक न उड़ी थी जो मुंह तक आती। ऐसा भी नहीं था कि अकाल पड़ गया हो। सारे में रजे-पुजे घर आबाद थे। टंकियों में भरे ख़राब होते हुए अनाज की बिसांद यहां तक आ रही थी। हर दरवाज़े पर लारी बंधी थी। सब घरों से बाहर निकलते समय हवेली के ऊंचे दरवाज़ों से गर्दन झुकाकर निकलते थे। सबके सिरों के शमले मांडी लगे थे अकड़े हुए। झूठ कहकर अपनी क़ब्र क्यों भारी करूं, मुझ पर पूरे चार वेले गुज़र गए थे।

मगर, फिर भी वह वक़्त अच्छे थे। सारा दिन गलियों में रुलता था। एक ने 'तो' 'तो' की उधर दौड़ पड़े। दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई, उधर निकल गए। जगह-जगह मुंह मार के पेट नहीं भरता था। बस यारा ऐसे ही गुज़र गई। हम सिरफिरों

को पता ही न चला, ज़िन्दगी किसे कहते हैं। तेरे दादा को खुदा जन्नत नसीब करे, भला आदमी था लेकिन यार वह गांव आता कभी-कभी था और जब आता था दो घोड़ों पर लदे हुए चांदी के रुपयों के तोड़े भरकर लाता था। उसे मैंने हमेशा हरे रंग की सदरी में देखा। पैरों में रोज़ी कुरलाती खेड़ियां, वाह वाह बोदे संवरे हुए और दोनों घोड़ियों की बागें हाथों में, जिन पर लदे हुए चांदी के रुपयों के तोड़े।

वह आगे-आगे और यार लोग पीछे-पीछे, घोड़ियों पर लदे हुए तोड़ों से चांदी गिरती रहती और हम चुनते जाते। तुम जानते हो कई बार हमने भी चांदी से तोड़े भर लिए।''

बाबा बोले जा रहा था और मैं कुहनियों के बल पड़े-पड़े थक गया था और मुझे पेशाब भी आया हुआ था, मैं हौले से उठ खड़ा हुआ और मस्जिद के पिछवाड़े चला गया।

मैं देर तक बाबे नूर मुहम्मद के कच्चे सहन में खड़े हुए इंजीर की ओर तकता रहा था पर जब वापस आया हूं तो बाबा उसी तरह मुस्कराता हुआ अपने पतले पीले हाथ लहराता, उसी करवट पड़ा था और यहां तक पहुंचा था :

''हां—वह भले लोग थे। जब दिन के उजाले में आते तो यूं घोड़ियों की बागें थामे हुए और जब आड़े-थुड़े होते तो गहरी शामों में चुप, आहिस्तगी के साथ उस हुजरे से मुंह छिपाकर हवेली को निकल जाते।''

मैंने बाबा को टोक दिया, ''क्यों बाबा, वह गहरी शामों में छिपकर क्यों गुज़र जाते थे ?''

बाबा एक बार फिर चोले के तने को अपनी दाईं आंख तक लाया। कुछ देर चुप अपनी उखड़ी हुई सांस दुरुस्त करता रहा, फिर बोला, ''ओ यारा—मैंने बताया तो है कि आड़े-थुड़े वक़्तों में ऐसा होता था। नेक बंदों के पास जब ग़रीब-गुरबा को देने के लिए कुछ न होता तो वह इसी तरह करते हैं—वह भले लोग भी शामों में चुप आहिस्तगी के साथ उस हुजरे से मुंह छिपाए सीधे निकल जाते थे।

मना, क्या-क्या बताऊं कि उनके दिए हुए रुपयों से भरे चांदी के तोड़ों का हम क्या करते थे। हम चार-चार वक़्तों के भूखों ने एक-एक रोटी—चांदी का पूरा-पूरा तोड़ा देकर ली है। बस इस तरह खर्च हो जाता था और भले लोगों की टंकियों से अनाज की बिसांद यहां तक उठ आती थी। विश्वास करना, मैंने अपनी क़ब्र क्यों भारी करनी है—''

भले लोगो ! मैंने यह सब सुनकर करवट ली थी और बहुत हैरान हुआ था। देर तक जब बाबा चुपचाप इसी तरह पड़ा रहा था और सांस की धौंकनी चलकर रुक गई थी तो मैंने उसे आवाज़ें दी थीं और मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि हवेली जाकर टंकी में घुस जाऊंगा और डाट निकालकर सड़ते हुए अनाज की बिसांद को रास्ता दूंगा। मैंने सोचा था और समझा था कि बाबा सो गया है। मैं पंजों के बल

चलता हुआ हुजरे से बाहर आ गया। सामने हमारी हवेली थी, जहां बिसांद कैद थी।

दरवाज़े पर लारी बंधी थी और मेरा बाप घर के ऊंचे दरवाज़े से निकलते समय सिर झुकाए शमले को बचा रहा था। मैं दौड़कर बाप की टांगों में जा घुसा और मैंने कहा : "बाबा नूर मुहम्मद कह रहा था कि उसने एक रोटी चांदी का पूरा टुकड़ा देकर खरीदी है।"

मेरा बाप अपनी मूंछों में मुस्कराया। फिर पूछने लगा, "वह झूठा है कहां ? जा के देख, कहीं वाकई अपनी क़ब्र तो भारी नहीं कर गया।"

मैं हुज़रे की ओर दौड़ने लगा, फिर हम दोनों अन्दर गए तो नूर मुहम्मद गुज़र चुका था।

"भले लोगो, मुझे झूठ बोलकर अपनी क़ब्र क्या भारी करनी है ? मेरे जोड़ जवाब दे गए हैं। सुन मैं सकता नहीं, आंखों में मोतिया उतर आया है, कहीं तुम लोग भी कुहनियों के बल लेटे-लेटे थक तो नहीं गए और मस्जिद के पिछवाड़े चले गए हो।"

पता नहीं शायद आप लोगों को अभी आना हो। हरे रंग की सदरी में कुरलाती खेड़ियां और वाह-वाह बोदे और दोनों घोड़ियों की बागें हाथों में।

मैं उठूं, अपना खाली तोड़ा तलाश करूं, कहीं लूट में पीछे ही न रह जाऊं।

मुग़ल बच्चा

फ़तेहपुर सीकरी के सुनसान खंडहरों में गोरी दादी का मकान पुराने सूखे ज़ख़्म की तरह खटकता था। ककिया ईंट का दो मंज़िला घुटा-घुटा-सा मकान एक मार खाये रूठे बच्चे की तरह लगता था। देखकर ऐसा लगता था कि समय का भूचाल उसकी ढिठाई से विवश होकर आगे बढ़ गया और शाही शान-शौकत पर टूट पड़ा।

गोरी दादी झक चांदनी बिछे तख़्त पर सफ़ेद बेदाग़ कपड़ों में एक संगमरमर का मक़बरा मालूम होती थीं। सफ़ेद ढेरों बाल, बिना ख़ून की सफ़ेद धोई हुई मलमल जैसी चमड़ी। हल्की नीली आंखें जिन पर सफ़ेदी रेंग आती थी पहली नज़र में सफ़ेद लगती थीं। उन्हें देखकर आंखें चकाचौंध हो जाती थीं जैसे बसी हुई चांदनी का गुबार उनके गिर्द छाया हो।

न जाने कब से जिये जा रही थीं। लोग उनकी आयु सौ वर्ष बताते थे। खुली-खुली गुमसुम प्रकाशहीन आंखों से वे इतने साल क्या देखती रही थीं। क्या सोचती रही थीं, कैसे जीती रही थीं। बारह-तेरह वर्ष की आयु में वे मेरी अम्मां के चचेरे भाई से ब्याही तो गई थीं मगर उन्होंने दुल्हन का घूंघट भी न उठाया। कंवारपन की एक शताब्दी उन्होंने इन्हीं खंडहरों में बिताई थी। जितनी गोरी बी सफ़ेद थीं उतने ही उनके दूल्हा काले सियाह थे। इतने काले कि उनके आगे चिराग़ बुझे। गोरी बी बुझकर भी धुआं देती रहीं।

शाम को खाना खाकर झालियों में सूखा मेवा भरकर हम बच्चे लिहाफ़ों में दुबककर बैठ जाते और पुरानी ज़िंदगी का अध्ययन शुरू हो जाता। बार-बार सुनकर भी जी न भरता। अदल-बदल कर गोरी बी और काले मियां की कहानी दोहराई जाती। बेचारे की अक्ल पर पत्थर पड़ गये थे कि इतनी गोरी दुल्हन का घूंघट भी न उठाया।

अम्मां साल के साल पूरा लाव-लश्कर लेकर मायके पर धावा बोल देतीं। बच्चों की ईद हो जाती। फ़तेहपुर सीकरी के भेदपूर्ण शाही खंडहरों में आंख-मिचौनी

खेलते-खेलते जब शाम पड़ जाती तो खोये-खोये कालिमापूर्ण वातावरण से डर लगने लगता। हर कोने से साये लपकते, दिल धक-धक करने लगते।

'काले मियां आ गये' हम एक-दूसरे को डराते। गिरते-पड़ते भागते और ककिया ईंट के दो मंजिला मकान की गोद में दुबक जाते। काले मियां हर अंधेरे कोने में भूत की तरह छुपे महसूस होते। बहुत से बच्चे मरने के बाद जब हज़रत सलीम चिश्ती की दरगाह पर माथा रगड़ा तब गोरी बी का मुंह देखना नसीब हुआ। मां-बाप की आंखों की ठंडक गोरी बी बड़ी ज़िद्दी थीं। बात-बात पर अटवाती-खटवाती लेकर पड़ जातीं। भूख हड़ताल कर देतीं। घर में खाना पकता, कोई मुंह न जुठलाता, ज्यों का त्यों उठया मस्जिद में भिजवा दिया जाता। गोरी बी न खातीं तो अम्मां बाबा कैसे निवाला तोड़ते...

बात इतनी-सी थी कि जब मंगनी हुई तो लोगों ने मज़ाक में छींटे कसे—गोरी दुल्हन, काला दूल्हा।

मगर मुग़ल बच्चे मज़ाक के आदी नहीं होते। सोलह-सत्रह वर्ष के काले मियां अंदर ही अंदर घुटते रहे। जलकर कोयला होते रहे।

"दुल्हन मैली हो जायेगी, खबरदार यह मैले-मैले हाथ मत लगाना।"

"बड़े नाज़ों से पाली है, तुम्हारी तो परछाई पड़ी तो काली हो जायेगी।"

"बड़ा घमंड है सारी उम्र जूतियां उठवायेगी।"

अंग्रेज़ों ने जब मुग़लशाही का अंतिम संस्कार किया तो सबसे बुरी मुग़ल बच्चों पर बीती क्योंकि वे सबसे ज़्यादा पदवियां संभाले बैठे थे। पद और जागीरें छिन जाने के बाद लाख के घर देखते-देखते ख़ाक हो गये। बड़ी-बड़ी हवेलियों में मुग़ल बच्चे भी पुराने सामान की जगह जा पड़े। भौंचक्के से रह गये जैसे किसी ने पैरों तले से तख़्ता खींच लिया।

तब ही मुग़ल बच्चे अपने घमंड और स्वाभिमान की तार-तार चादर में सिमटकर अपने अंदर ही अंदर घुसते चले गये। मुग़ल बच्चे अपने धुरे से कुछ खिसके हुए होते हैं। खरे मुग़ल की पहचान है कि उसके दिमाग़ के दो-चार पेंच ढीले या ज़रूरत से ज़्यादा तंग होते हैं। आसमान से ज़मीन पर गिरे तो मानसिक संतुलन डगमगा गये। जीवन के मूल्य गलत-सलत हो गये। दिमाग़ से ज़्यादा भावनाओं से काम लेने लगे।

अंग्रेज़ों की नौकरी लानत और मेहनत-मज़दूरी शान के विरुद्ध, जो कुछ संपत्ति बची उसे बेच-बेचकर खाते रहे। हमारे अब्बा के चाचा रुपया-पैसा की जगह चच्ची के दहेज के चांदी के पायों वाले पलंग का पत्तरा उखेड़ ले जाते थे। ज़ेवर और बर्तनों के बाद टंके जोड़े नोच खाते थे। पानदान की फल्हेइयां सिलबट्टे से कुचलकर टुकड़ा-टुकड़ा बेचें और खायें। घर के मर्द दिन भर पलंग की अदवाइन तोड़ते। शाम को घिसी-पिटी अचकन पहनी और शतरंज पचीसी खेलने निकल गये। घर की बीवियां

छुप-छुपकर सिलाई कर लेतीं। चार पैसों से चूल्हा जल जाता या मुहल्ले के लड़कों को कुरान पढ़ा देतीं तो कुछ नज़राना मिल जाता।

काले मियां ने दोस्तों की छेड़खानी को जी का घाव बना लिया। जैसे मौत की घड़ी नहीं टलती वैसे ही मां-बाप की ठहराई हुई शादी न टली। काले मियां सिर झुकाये दूल्हा बन गये। किसी सिरफिरी ने ठीक आरसी-मसहफ़ (शादी के बाद दूल्हा-दुल्हन को आईना और कुरान शरीफ़ दिखाने की रस्म या दूल्हा-दुल्हन को एक-दूसरे को मुंह दिखाई) के समय छेड़ दिया।

"खबरदार जो दुल्हन को हाथ लगाया, काली हो जायेगी।"

मुग़ल बच्चा चोट खाये नाग की तरह पलटा। सिर से बहन का आंचल नोंचा और बाहर चला गया।

हंसी में खसी हो गई। एक मातम शुरू हो गया। मर्दानखाने में इस त्रासदी की खबर हंसी में उड़ा दी गई। बिन आरसी-मसहफ के बंधाई एक प्रलय थी।

"खुदा की कसम मैं उसका घमंड चकनाचूर कर दूंगा। किसी ऐसे-वैसे से नहीं मुग़ल बच्चे से वास्ता है।" काले मियां फुंकारे।

काले मियां कड़ी की तरह पूरी मसहरी पर लेटे थे। दुल्हन एक कोने में गठरी बनी कांप रही थी। बारह वर्ष की बच्ची की औकात ही क्या ?

"घूंघट उठाओ" काले मियां फुंकारे।

दुल्हन और गुड़ीमुड़ी हो गई।

"हम कहते हैं घूंघट उठाओ।" कोहनी के बल उठकर बोले। सहेलियों ने तो कहा था दूल्हा हाथ जोड़ेगा पैर पड़ेगा पर खबरदार जो घूंघट को हाथ लगाने दिया, दुल्हन जितनी ज़्यादा रोके उतनी ही ज्यादा पवित्र।

"देखो जी ! तुम नवाबजादी होगी अपने घर की। हमारी तो पैर की जूती हो। घूंघट उठाओ हम तुम्हारे बाप के नौकर नहीं।"

दुल्हन पर जैसे फालिज गिर गया।

काले मियां चीते की तरह लपककर उठे, जूतियां बगल में दाबीं और खिड़की से गृहवाटिका में कूद गये। सुबह की गाड़ी से वे जोधपुर दनदना गये।

घर में सोता पड़ा था। एक नौकरानी जो दुल्हन के साथ आई थी जाग रही थी। कान दुल्हन की चीखों की तरफ़ लगे थे। जब दुल्हन के कमरे से चूं तक की आवाज़ न आई तो उनके पैरों का दम निकलने लगा। हाय-हाय कैसी निर्लज्ज लड़की है। लड़की जितनी मासूम और कंवारी होगी उतना ही ज़्यादा दंद मचायेगी। क्या कुछ काले मियां में खोट है ? जी चाहा कुएं में कूदकर किस्सा खत्म करे।

चुपके से कमरे में झांका तो जी सन से हो गया। दुल्हन जैसी की तैसी धरी थी और दूल्हा गायब। बड़े अरुचिकर किस्म के हंगामे हुए, तलवारें खिंचीं। बड़ी मुश्किल से दुल्हन ने जो बीती थी वह कह सुनाई। इस पर तरह-तरह की बातें होती

रहीं। खानदान में दो पार्टियां बन गईं। एक काले मियां की और दूसरी गोरी बी की तरफ़दार।

"वह आखिर खुदा मिजाज़ी है, उसका हुक्म न मानना गुनाह है।" एक पार्टी जमी हुई थी।

"कहीं किसी दुल्हन ने खुद घूंघट उठाया है ?" दूसरी पार्टी की दलील थी।

काले मियां को जोधपुर से बुलाकर दुल्हन का घूंघट उठवाने की कोशिशें बेकार हो गईं। वे वहां घुड़सवारों में भर्ती हो गये और बीवी को खाने-पीने का खर्चा भेजते रहे जो गोरी बीवी की अम्मां समधन के मुंह पर मार आतीं।

गोरी बी कली से फूल बन गईं। हर अठवाड़े हाथ-पैर में मेंहदी रचाती रहीं और बंधे-टंके दुपट्टे ओढ़ती रहीं और जीती रहीं।

फिर खुदा का करना ऐसा हुआ कि बाबा की मरन घड़ी आ पहुंची। काले मियां को खबर गई तो न जाने किस मूड में थे कि भागे आये। बाबा मौत का हाथ झटककर उठ बैठे। काले मियां को बुलाया। दुल्हन का घूंघट उठाने की बारीकियों पर सलाह-मशवरा हुआ।

काले मियां ने सिर झुका दिया पर शर्त वही रही कि प्रलय हो जाय पर घूंघट दुल्हन को खुद अपने हाथों उठाना पड़ेगा। "किब्ला ओ काबा मैं कसम खा चुका हूं कसम नहीं तोड़ सकता !"

मुग़ल बच्चों की तलवारें मंद पड़ चुकी थीं। आपस की मुकदमाबाजी ने सारा कलफ निकाल दिया था। बस मूर्खतापूर्ण ज़िदें रह गई थीं। एक उम्मीद को वह कलेजे से लगाये बैठे थे। किसी ने काले मियां से न पूछा कि तुमने ऐसी मूर्खतापूर्ण कसम खाई ही क्यों कि अच्छी-भली ज़िंदगी कष्ट बन जाये। खैर साहब गोरी बी फिर से दुल्हन बनाई गईं। ककिया ईंट वाला मकान फिर फूलों और खुशबुओं से महक उठा। अम्मां ने उसे समझाया, "तुम उसकी विवाहिता हो बेटी जान, घूंघट उठाने में कोई ऐब नहीं। उसकी ज़िद पूरी कर दो मुग़ल बच्चा की आन रह जायेगी। तुम्हारी दुनिया संवर जायेगी। गोदी में फूल बरसेंगे, अल्ला रसूल का हुक्म पूरा होगा।" गोरी बी सिर झुकाये सुनती रहीं। कच्ची कली सात साल में नवयुवा क्यामत बन चुकी थी। सुन्दरता और यौवन का एक तूफ़ान था जो उनके शरीर से फूटा पड़ता था।

औरत काले मियां की सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। इंद्रियां इसी एक बिंदु पर केंद्रित थीं। मगर उनकी कसम एक कीलदार लोहे के गोले की तरह उनके हलक में फंसी हुई थी। उनकी कल्पना ने सात वर्ष आंख-मिचौनी खेली थी। उन्होंने बीसियों घूंघट नोंच डाले। रंडीबाजी, लौंडेबाजी, बटेरबाजी, कबूतरबाजी अर्थात् कोई बाज़ी न छोड़ी। मगर गोरी बी के घूंघट की चोट दिल में पंजे गाड़े रही जो साल साल तक सहलाने के बाद ज़ख्म बन चुकी थी। इस बार उन्हें विश्वास था कि उनकी कसम

पूरी होगी। गोरी बी ऐसी अकल की कोरी नहीं कि जीने का यह आखिरी अवसर भी गंवा दें। दो उंगलियों से हल्का-फुल्का आंचल ही तो सरकाना है कोई पहाड़ तो नहीं ढोने।

"घूंघट उठाओ" काले मियां ने बड़ी नर्मी से कहना चाहा मगर मुग़लई दबदबा आड़े आ गया। गोरी बी घमंड से तमतमाई सन्नाटे में बैठी रहीं।

"आखिरी बार हुक्म देता हूं घूंघट उठा दो वरना इसी तरह पड़ी सड़ जाओगी। अब जो गया फिर नहीं आऊंगा।"

मारे गुस्से के गोरी बी लाल भभूका हो गईं। काश उनके सुलगते गालों से एक शोला लपकता और मनहूस घूंघट जलकर खाक हो जाता।

बीच कमरे में खड़े काले मियां कोड़ियाले सांप की तरह झूमते रहे। फिर जूते बगल में दबाये और गृहवाटिका में उतर गये।

अब वह गृहवाटिका कहां ? इधर पिछवाड़े में लकड़ियों की टाल लग गई। बस दो जामुन के पेड़ रह गये थे और एक-दो पुरानी बेलें चमेली की क्यारियां, गुलाबों के झुंड, शहतूत और अनार के पेड़ कब के लुट-पुट गये।

जब तक मां जिंदा रहीं गोरी बी को संभाले रहीं। उनके बाद यह ड्यूटी खुद गोरी बी ने संभाल ली। हर जुमेरात को मेंहदी पीसकर पाबंदी से लगातीं, दुपट्टा रंग चुनकर टांकतीं और जब तक ससुराल जिंदा रही त्योहार पर सलाम करने जाती रहीं।

अबके जो काले मियां गये तो ग़ायब हो गये। वर्षों उनका सुराग़ न मिला। मां-बाप रो-रोकर अंधे हो गये। वे न जाने किन जंगलों की खाक छानते फिरे। कभी खानकाहों में उनका सुराग़ मिलता। कभी किसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़े मिलते।

गोरी बी के सुनहरी बालों में चांदी घुल गई। मौत की झाड़ू काम करती रही। आस-पास की जमीनें, मकान कौड़ियों के मोल बिकते गये। कुछ पुराने लोग जबरदस्ती डट गये। कुंजड़े कसाई आन बसे, पुराने महल ढहकर नई दुनिया की बुनियाद पड़ने लगी। परचून की दुकान, डिस्पेंसरी, एक मरियल-सा जनरल स्टोर भी उग आया जहां एल्यूमिनियम की पतीलियां और लिपटन की चाय के पैकेट लटकने लगे।

एक पक्षाघातग्रस्त मुट्ठी की दौलत रिसकर बिखर रही थी। कुछ सावधान उंगलियां समेटने में लगी थीं। जो कल तक अददायन पर बैठते थे, झुक-झुककर सलाम करते थे, आज साथ बैठना शान के विरुद्ध समझते थे।

गोरी बी का जेवर आहिस्ता-आहिस्ता लालाजी की तिजोरी में पहुंच गया। दीवारें ढह रही थीं, छज्जे झूल रहे थे। बचे-खुचे मुग़ल बच्चे अफीम का अंटा निगलकर पतंगों के पेच लड़ा रहे थे, तीतर-बटेर सिधा रहे थे और कबूतर की दुमों के पर गिनकर हलकान हो रहे थे। शब्द 'मिर्ज़ा' जो कभी शान और दबदबे की निशानी समझा जाता था मज़ाक बन रहा था। गोरी बी कोल्हू के अंधे बैल की तरह जीवन के छकड़े में जुती अपने धुरे पर घूमे जा रही थीं। उनकी नीली आंखों में अकेलेपन

ने डेरा डाल दिया था।

उनके बारे में तरह-तरह की कहानियां मशहूर थीं कि उन पर जिन्नों का बादशाह आशिक था ज्योंही काले मियां उनके घूंघट को हाथ लगाते झट तलवार निकालकर खड़ा हो जाता। हर जुम्मेरात को शाम की नमाज़ के बाद वजीफा पढ़ते हैं तो तब सारा आंगन कोड़ियाले सांपों से भर जाता है फिर सुनहरी कलगी वाला सांपों का बादशाह अजगर पर सवार होकर आता है। गोरी बी की किरत (कुरान का पाठ) पर सिन धुनता है। पौ फटते ही सब नाग विदा हो जाते हैं।

जब हम यह किस्से सुनते तो कलेजे उछलकर हलक में फंस जाते और रात को सांप के फुंकारे सुनकर सोते में चौंककर चीखें मारते।

गोरी बी ने सारी उम्र कैसे-कैसे नाग खिलाये होंगे। कैसे अकेली नामुराद ज़िंदगी का बोझ ढोया होगा। उनके रसीले होंठों को कभी किसी ने नहीं चूमा। उन्होंने शरीर की पुकार को क्या जवाब दिया होगा।

काश यह कहानी यहीं खत्म हो जाती मगर किस्मत मुस्करा रही थी।

पूरे चालीस वर्ष बाद काले मियां खुद आ धमके। तरह-तरह की लाइलाज बीमारी लगी हुई थीं। पोर-पोर सड़ रही थी। रोम-रोम रिस रहा था। बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी। बस आंखों में हसरतें जाग रही थीं जिनके सहारे जान सीने में अटकी हुई थी।

"गोरी बी से कहो—मुश्किल आसान कर जाए।"

एक कम साठ की दुल्हन ने रूठे दूल्हा मियां को मनाने की तैयारियां शुरू कर दीं। मेंहदी घोलकर हाथ-पैरों में रचायी। धानी समोकर पिंडा पाक किया। चिकटा हुआ तेल सफेद लटों में बसाया संदूक खोलकर तार-तार झड़ता बरी का जोड़ा निकालकर पहना और उधर काले मियां दम तोड़ते रहे।

जब गोरी बी शर्माती-लजाती धीरे-धीरे कदम उठाती उनके सिरहाने पहुंचीं तो झिलंगे पर चकियट तकिये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले मियां की मुट्ठी भर हड्डियों पर ज़िंदगी की लहर दौड़ गई। मौत के फरिश्ते से उलझते हुए काले मियां ने हुक्म दिया, "गोरी बी घूंघट उठाओ।"

गोरी बी के हाथ उठे मगर घूंघट तक पहुंचने से पहले गिर गये। काले मियां दम तोड़ चुके थे।

वह बड़ी शांति से उकड़ूं बैठ गई। सुहाग की चूड़ियां ठंडी कीं और रंडापे का सफेद आंचल माथे पर खिंच गया।

मुग़ल-सराय

शाम के साये गहरे हो गये थे और वे दोनों मटमैले अंधेरे में धुंधलाए हुए गतिशील धब्बों के समान चुपचाप बढ़े चले जाते थे। उनके साथ फुटपाथ पर सफेदे की कतार में बहती हुई हवा की सरसराहट अब साफ सुनाई दे रही थी और वे दोनों एक साथ कदम उठाते यहां इस जगह पहली बार ठिठककर रुके थे।

अभी कुछ देर पहले पीछे से आते हुए खिलंदड़े नौजवानों की एक टोली बहुत देर तक उन्हें अपने घेरे में लिए चलती रही थी और वे उनके बीच मुजरिमों की तरह सिर झुकाए बहुत आहिस्ता कदम उठाते यहां तक पहुंचे थे। अब वह हंसती-गाती टोली बहुत आगे निकल गई थी और दूर तक कोई न था अलबत्ता उनके कंधे अभी तक रगड़ खा रहे थे। लड़का कदरे झुककर चल रहा था और उसका बलखाया हुआ बायां बाज़ू लड़की को पूरी तरह अपनी लपेट में लिए हुए था।

वे दोनों इस क्षेत्र में नए थे और केवल सुनी-सुनाई पर यहां तक निकल आए थे। अब वे सफेदे की कतार के इस सिरे पर आखिरी पेड़ से टेक लिए खड़े थे और दूर तक मटमैला अंधेरा लोटें ले रहा था।

दोनों अपने थैलों के बोझ से ज़रा-ज़रा आगे को झुके हुए किसी हद तक निराश भी थे। लड़के ने टॉर्च निकालकर मटमैले अंधेरे में दूधिया रोशनी के फंदे हर ओर फेंके और मायूस होकर सिर झुका लिया। दोनों को अपनी टांगें ज़मीन में धंसती हुई महसूस हुईं और वे देर तक यहीं उसी जगह भारी थैलों के बोझ तले दबे, बेबसी से आगे-पीछे झूलते रहे।

उनको इस स्थिति में अधिक समय नहीं बीता होगा कि एक बड़े शोर के साथ दो सरपट आते हुए घोड़ों के पीछे दायें-बायें झूलती हुई बग्घी एक झटके के साथ उनसे कुछ कदम आगे निकलकर मौन हो गई, देखते ही देखते दोनों ओर के दरवाज़े खुले और चमकते हुए भालों को संभाले, दो बुझे हुए चेहरों वाले मनुष्यों ने सभ्यता के साथ बग्घी में नर्म झूलानुमा स्थान पर बैठाया और ले चले।

लड़की को लपेट में लिए हुए बाजू की गिरफ्त अब ढीली पड़ गई थी और दोनों जिस भय के अभी कुछ देर पूर्व बंदी थे वह स्वप्न होता जा रहा था। वह अजब स्वेच्छा के आलम में हवा के कंधे पर थे और तेज़ हवा में उनके ऊपर को उठे हुए नर्म कालरों में आधे छुपे हुए अर्द्धनिद्रित आंखों वाले सन्तुष्ट चेहरे दायें-बायें झूल रहे थे।

एक जगह बग्घी धीरे-धीरे रुक गई और उन्होंने जाना कि जैसे एक ठहरे हुए क्रोधयुक्त पानी के धारे को मार्ग दिया गया हो। वे जब शिष्टतापूर्वक सेवक का सहारा लिए बग्घी से बाहर आए तो थैलों के बोझ से उनके कंधे स्वतंत्र थे और उनके सामने आबनूस का पीतलजड़ा हुआ दैत्य समान द्वार धीरे-धीरे खुलता चला जा रहा था और उसकी अन्दर की ओर खींचते और कोष्ठक बनाते हुए ज़ंजीर क्रोधयुक्त पानी के धारे का शोर बाहर उगल रहे थे।

दरवाज़ों की दोनों चौकियों पर ठहरे हुए लैम्पपोस्ट अपनी पीली कांपती हुई रोशनी उगलते प्रकट और एक हद तक उदासीन दिखाई दिए।

वे दोनों एक बार फिर कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगे। लड़के के बलखाए हुए बाजू ने लड़की को एक बार फिर अपनी लपेट में ले लिया। लाल वर्दियों में कमर के गिर्द धारीधार पटके लपेटे हुए निम्बकद के सेवक उनके थैलों को सावधानी से संभाले 'रप-रप' करते उनके पीछे चले आते थे। स्वागत की अर्द्ध प्रकाशित मेहराब तले, लटकी हुई मूंछों और कल्लों से कोनों की ओर मुड़ी हुई नोकदार कलमों वाले आतिथ्यकर्ता ने झुककर उन्हें शुभागमन कहा और साथ हो लिया। वह मार्ग में बिछता चला जा रहा था और उस वाचाल ने मजाल है कि उन्हें बात करने का मौका दिया हो। वह कह रहा था—"हुज़ूर ! यह हमारा सौभाग्य है कि आपकी सेवा का अवसर हाथ आया है, पुर्तगाली, दिन्दरेजी, फ्रांसीसी और अंग्रेज सभी हमारे सिर आंखों पर और अरब देशों के शेख तो हमारे भाई बन्द हैं—हुज़ूर खातिर जमा रखिए !"

इस समय वह धुली हुई सुर्ख ईंटों वाली राहदारियों पर चल रहे थे और उनके दोनों ओर खुले तालाबों के स्वच्छ पानी में वृक्षों का गहरा प्रतिबिम्ब कांप रहा था। वे कंधे से कंधा मिलाकर चले जा रहे थे और सामने बिछता हुआ आतिथ्यकर्ता—

"बन्दापरवर, हमें यकीन है कि मुग़ल सराय की ख्याति सुनकर ही आप चले होंगे। वास्तव में आपने जो कुछ सुना वह सब सही है। यहां सराय में अतिथि को पुरातन मुग़ल रख-रखाव के साथ ठहराया जाता है और ज्यादा क्या कहूं, आप स्वयं ही मेहरबान होंगे और हमारी सेवा को स्वीकार करेंगे।"

गेंदे के फूलों और बनफशे के दूर तक फैले दरख़्तों को पार कर वे चीड़ के छोटे दरवाज़ों वाली कतार के साथ हो लिए फिर तंग गुलाम गर्दिशों की समस्या आ गई। यहां हर कदम पर दरवाज़ों के साथ सीधी ऊपर को उठी हुई मशालों का धुआं नीची छत पर लेप कर रहा था। वे सावधानी से झुके-झुके आतिथ्यकर्ता के

पीछे चलते रहे। फिर वह एक जगह रुका और एक जंग लगे हुए ताले को खोलते हुए सामने से हटकर सम्मान से झुका तब उनके सामने एक दरवाज़ा भीषण चरचराहट के साथ खुलता चला गया। फिर वह लपक-झपक अन्दर आ गया और आतिशदान को रोशन कर आया। वे दोनों दरवाजे में खड़े थे और सेवक उनके थैले कमरे में एक तरफ़ रखकर कब के जा चुके थे। फिर आतिथ्यकर्ता ने झुककर आज्ञा मांगी और धीरे-धीरे आतिशदान में चटकती हुई लकड़ियों और उड़ते हुए अग्निकणों के मद्धिम प्रकाश से अन्दर का माहौल स्पष्ट होता गया।

उनके सामने नीची छत के अर्द्ध प्रकाशित कमरे में भारी पलंग के सिरहाने आतिशदान के ठीक ऊपर दो हलाली तलवारें मटियाले रंग के ढाल के आरपार ठहरी हुई थीं। कमरे में दीवारों के सहमे हुए हिरन और बारहसिंगे बस कमरे में निकला ही चाहते थे ! फिर जाने कहां से झुककर आदाब बजा लाती दो सेविकाएं प्रकट हुईं। दरवाज़े में सहमा हुआ वह जड़वत खड़ा था। वे आईं और लड़की को सहारा देती हुई साथ के दरवाज़े में गायब हो गईं। लड़का हिम्मत करके उनके पीछे चला लेकिन उसके पांव नीचे बिछे हुए कालीन में धंसते चले जा रहे थे और बड़ी मुश्किल में था, जाने क्यों उस पर तंद्रा अधिकार जमाने लगी और वह लड़खड़ा-सा गया। जब उसे होश आया तो उसने देखा कि उसकी साथी लड़की, कोई मुग़ल शहज़ादी है जो बड़े पलंग पर पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह खिली हुई है। इसी समय वह अर्द्ध तन्द्रा में बगली कमरे से होता हुआ नाजुक दासियों के बाजुओं में लिपटा-लिपटाया आगे बढ़ रहा था !

और वह स्वयं जैसे कोई मुग़ल शहज़ादा, ढाके की मलमल पर सुनहरी सदरी और कमर के गिर्द पटके में उड़सा हुआ जड़ाऊ मूठ का मुड़ा हुआ खंजर संभाले हुए था जिसके दस्ते पर रेशमी फुन्दना, उसके लड़खड़ाते कदमों के साथ झूल रहा था।

वह अर्द्ध निद्रा में लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ रहा था और उसने अकेलापन चाहा था। कमरे में अब केवल मोरछल हिलाती हुई दो सेविकाएं रह गयी थीं और शायद पलंग पर अधलेटी मुग़ल शहज़ादी ने कोई मांग कर दी थी। ऐसे में बग़ली कमरे से कोई एक अस्तित्व बहुत गहरा घूंघट निकाले हुए प्रकट हुआ था और झुकी-झुकी निगाहों के साथ चांदी की ऊंची समावार जिसके नीचे आग दहक रही थी और बड़े थाल में सूखे मेवे और चित्रित सुराहियां और भारी प्याले करीने से सजाकर पलट गया था।

वह लड़का जैसे कोई मुग़ल शहजादा, बग़ैर कुछ खाए-पीए पलंग पर चित लेट गया और उसकी आंखें मुंदती चली गईं। शायद कुछ देर वह सोया भी होगा। इसी बीच बराबर से उठकर उसकी साथी लड़की—मुग़ल शहजादी ने कमरे का चक्कर लगाया और पाईं बाग़ की ओर खुलने वाली खिड़की में ठहरी रही।

फिर जैसे-जैसे रात बीत रही थी, नीचे दूर तक निकल गये घने वृक्षों में विभिन्न विचित्र प्रकार की गुर्राहटों का शोर उभरता चला गया। वृक्षों में भरा धुआं तथा चिड़ियां शोर करते हुए आकाश की ओर उठने लगीं। शोर बढ़ रहा था। बाहर चांदनी में मार्गों के साथ-साथ थोहर की ऊंची-नीची दीवारें, घास के तख़्तों पर ठहरी हुई संगमरमर की कुर्सियां और कासनी फूलों से गुंधी बनफ़शे की मोटी पर्तें सब धीरे-धीरे मंद पड़ गईं और हर ओर से बढ़ता, करवटें लेता हुआ पागल कर देने वाला शोर हर तरफ़ भर गया।

लड़की घबराहट में धीरे-धीरे पीछे हटती गई थी। यहां तक कि कमरे में मेज़बान की आवाज़ गूंजी—

"हुज़ूर, बेफ़िक्र रहिए, यह शोर मनुष्य निर्मित है और केवल आपके मनोरंजन के लिए इस समय हमारे वैतनिक सेवकों की टोलियां पाईं बाग के कोने-खदरों में हरकत कर रही हैं। यह भेड़ियों और गीदड़ों के मिले-जुले स्वर बाहर के दृश्य में प्राकृतिक रंग भरने के खातिर हैं हुज़ूर—निश्चिंत रहिए।"

आतिथ्यकर्ता ने लपककर बाहर की ओर खुलने वाली खिड़की के सामने रेशमी पर्दों को बराबर कर दिया।

आवाज़ें निरंतर आ रही थीं जैसे भेड़ियों के समूह निकल आए हों और उन्होंने सराय को अपने घेरे में ले रखा हो। आतिथ्यकर्ता के स्पष्टीकरण को सुनकर लड़की ने संतोष का सांस लिया था। फिर वह पाईं बाग को चलने के लिए ज़िद करने लगी परंतु लड़का थका हुआ था और नींद भी आ रही थी।

एकाएक लड़की खड़ी हो गई और जिज्ञासायुक्त दृष्टि के साथ उछलती हुई खिड़की से दूसरी ओर कूद गई ! ऐसे में आतिथ्यकर्ता उसे पुकारता रह गया और घास के नर्म तख़्तों और कासनी फूलों पर बिना भय चलती आगे ही आगे बढ़ती चली गई। वह वृक्षों और झाड़ियों के पीछे छुपे हुए वैतनिक सेवकों को दरिन्दों का कृत्रिम स्वर पैदा करते हुए ढूंढ निकालना चाहती थी। ऊपर वृक्षों की टहनियों से उलझते हुए पक्षी उसके सिर पर चक्कर खाते, उसके साथ-साथ अंधेरे में आगे बढ़ते रहे और वह अपने आप में मगन मुग़ल-सराय के पाईं बाग से लगे घने जंगल में उतरी चली गई।

अन्दर सराय के इस अर्द्ध अन्धकारपूर्ण एकांत में लड़का हड़बड़ाकर उठ बैठा था और उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। नींद में उसे यूं अनुभव हुआ जैसे कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा हो। वह कुछ देर यूं ही गुमसुम बैठा रहा फिर उसने लड़की के विषय में पूछा। इस अवसर पर आतिथ्यकर्ता को पहली बार उसने परेशान देखा। वह अपने अनुभव को बरकरार लाते हुए अपनी वाचालता का अतुल प्रदर्शन कर रहा था परंतु उसकी कांपती टांगें और उसके चेहरे पर कोरे लट्ठे के खुलते हुए थान और सजल नेत्रों और ज़बान की हकलाहट—सब उसका साथ

नहीं दे पा रहे थे।

लड़का अपनी सुनहरी सदरी पर लिपटे हुए पटके में उड़सा हुआ जड़ाऊ मूठ का मुड़ा हुआ खन्जर संभालता उठ खड़ा हुआ। उसने कानों में पहने हुए सफेद मुन्दरे, गले की मालाएं और जड़ाऊ बाजूबंद वहीं नोचकर फेंक दिये फिर वह कोने में रखी मन्द पड़ती हुई मशाल को एक हाथ में थामे पाईं बाग में उतर गया। सराय का आतिथ्यकर्ता उसके पीछे गिरता-पड़ता चला आता था ! नीचे के शोर में कान पड़ी आवाज़ें सुनाई न देती थीं और लड़का सबसे निःस्पृह उसका नाम पुकारता हुआ आगे बढ़ रहा था, अंततः प्रातः की धुंधलाहट में वह वहां तक पहुंच ही गया जहां चक्कर खाते और ऊपर से झुकी हुई टहनियों में उलझते पक्षी हाहाकार कर रहे थे। सहसा करीब की झाड़ियों से तीर की तरह दो साए निकले और जंगल की तराई में खो गए।

लड़का उसका नाम लेकर वहीं झुक गया। बुझी हुई मशाल वहीं रह गई थी और उसके दूसरे हाथ की गिरफ्त कमर में मुड़े हुई खंजर पर ढीली पड़ रही थी।

सूर्य अब धीरे-धीरे ऊपर उठ आया था और अतिथ्यकर्ता कह रहा था : "हुज़ूर ! मुग़ल-सराय की प्रबंध समिति इस घटना के होने पर बहुत अधिक पश्चाताप करती है। हम स्वयं चकित हैं पाईं बाग और उससे सम्बन्धित क्षेत्र में जाने कैसे सचमुच के भेड़िये और गीदड़ों की टोलियां आ गई हैं। हुज़ूर; आप दुखी न हों, स्वर्गवासी का अन्तिम संस्कार करने के लिए हमारे कर्मचारी वर्ग को आप बहुत जल्द सक्रिय भूमिका में देखेंगे। हमारा भरसक प्रयत्न होगा कि आपकी हानि की क्षतिपूर्ति–"

इस सराय के इस अर्द्ध अंधेरे कोने में सुर्ख कालीन पर दो थैले रह गये थे और उनके समीप ही चांदी की ऊंची समावार जिसके नीचे राख उड़ रही थी और बड़े थाल में खुश्क मेवे और चित्रित सुराहियां और भारी प्याले ज्यों के त्यों सभ्यता से सजे रखे थे !

राजाजी की सवारी

यह फागुन की एक सर्द शाम का क़िस्सा है जब वर्षा थी कि किसी तरह थमने का नाम न लेती थी और किसानों की इस भरी-पूरी आबादी के वासी गहरी नींद सो रहे थे। ऐसे में एक मुसाफ़िर गिरता-पड़ता अभी कुछ ही देर पहले वहां पहुंचा था। वह कीचड़ में लथपथ था। नीले पत्थरों के टुकड़ों और मिट्टी से चुनी हुई दीवार में झूलते हुए दरवाज़े के सामने क्षण भर को ठहर गया था।

कथाकार कहता है कि उसके पीछे भारी सामान से लदा-फदा एक खच्चर भी था जो अपने ऊपर लदे हुए बोझ तले दोहरा हो चला था।

मुसाफ़िर की हैरानी की सीमा न रही जब उसने सर्दी से कांपते हुए नीले होंठों को बड़ी कठिनाई से खोला ही था कि दरवाज़ा खुल गया। मुसाफ़िर सिर से पांव तक कीचड़ में लिपटा हुआ था और उसकी पहचान मुश्किल थी।

ऐसे में लालटेन की ज़र्द रोशनी में नहाए हुए एक मज़बूत शरीर ने उसका पथ-प्रदर्शन किया और वह अपने खच्चर समेत गोबर और कीचड़ से बचता-बचाता खपरैल की छत तले पहुंच गया। झोंपड़े के अंदर टखनों तक काला पानी भरा हुआ था।

मुसाफ़िर ने देखा कि उसके सामने आंगन से अंदर आते हुए गोबर मिले पानी में किनारा टूटी हुई बधनी (मिट्टी की टूंटीदार लुटिया) कभी औंधी और कभी सीधी होकर लुढ़कती चली जा रही थी। उसने झुककर उसे उठा लिया। अभी उसके होश दुरुस्त नहीं हुए थे और बधनी हाथ में लिए यों ही हैरान खड़ा था।

कथाकार कहता है कि इस बीच घर के मालिक ने खच्चर को बोझ से आज़ाद कर दिया था और सर्दी से सिमटे-सिकुड़े हुए अपने दो जिगर के टुकड़ों को एक झिलंगा खाट पर डालकर बहुत जल्दी में मुसाफ़िर के लिए बिस्तर दुरुस्त कर रहा था।

मुसाफ़िर को कुछ देर बाद होश आया तो उसने गर्म बिस्तर पर लेटे-लेटे करवट लेकर नीचे निगाह की जहां कुछ थोड़े से ऊंचे थड़े पर घर का मालिक उकडूं बैठा

था और चूल्हे पर चढ़ी हंडिया के नीचे सीले हुए ईंधन को फूंकें मार रहा था। उसकी पत्नी के सामने पीतल की परात में आटा गुंदा हुआ रखा था और गीले ईंधन से उठते हुए धुएं से उन दोनों की आंखों से आंसू बह रहे थे।

मुसाफ़िर चित लेट गया।

खपरैल की छत जगह-जगह से उधड़ी हुई थी और जगह-जगह से उधड़ी हुई छत को मटके के ठीकरों से ढांप दिया गया था। उसने देखा कि पुराने बान से कसे हुए धुआंसे लगे बांस वर्षा की प्रचंडता के साथ हलके-हलके हलकोरे ले रहे थे।

मुसाफ़िर को ऊंघ आ गई।

जब खाना तैयार हुआ तो उसकी नींद से बोझिल पलकें उठाए न उठती थीं। उसने अत्यंत थकन और तन्द्रा के मिले-जुले आभास के साथ पेट भरकर खाया और सिर-मुंह लपेटकर ऐसा सोया कि अगले रोज दोपहर तक पड़ा सोता रहा।

जब वह जागा तो आसमान साफ़ था और खपरैल की छलनी छत से रोशनी छन-छनकर अंदर आ रही थी। उस वक़्त झोंपड़े में कोई नहीं था। उसने अत्यंत शीघ्रता के साथ उठकर देखा कि उसका सामान कोनें में सुरक्षित पड़ा है और आंगन में दो नंग-धड़ंग बच्चे उसके सामान और खुद उसकी मौजूदगी से निस्पृह किसी खेल में मगन थे।

मुसाफ़िर धीरे-धीरे चलता हुआ बाहर निकला तो दोनों बच्चों ने उसे देख लिया और उद्विग्न होकर बाहर की ओर भागे।

कथाकार कहता है कि मुसाफ़िर उन्हें चुमकारता ही रह गया और दोनों बच्चों ने पीछे पलटकर नहीं देखा। आंगन में खुले आकाश के नीचे वह हैरान खड़े का खड़ा रह गया।

फिर उसने देखा कि मेजबान और उसकी पत्नी अपने कंधों पर दरांतियां उड़से अंदर आए और उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

मर्द के नंगे शरीर पर सिर्फ़ एक तहमद झूल रहा था और उसकी पत्नी के साधारण लिबास में बीसियों पैबंद लगे हुए थे। उन दोनों की ओट में बच्चे छुपकर खड़े हो गए।

मुसाफ़िर उन्हें अपने पीछे आने का इशारा कर झोंपड़े के अंदर चला गया। उसने अंदर जाकर अपनी कमर में उड़से हुए खंजर के साथ बंधे हुए सामान की रस्सियां काट डालीं।

दोनों मियां-बीवी ने उसी तरह दोनों हाथ जोड़ रखे थे और उनके कदमों में खालिस सोने के बुंदे, मुंदरे, उंगलियों के घुंघरुओं वाले बरिहाले, झुमके, हार, कंठ मालाएं, कनफूल, ढार, अचरियां, पायल, मोहन मालाएं, बुलाकड़ियां, कंगन, तमनियां, गजरियां, छंदन, बाजूबंद, टीके, पासे, चंगरिया, जनकियां, बंदन छन, पंजलड़े और भारी

सलवड़े बिखरे हुए थे।

मुसाफिर कह रहा था कि इसमें से जितना चाहो उठा लो और वे थे कि खड़े-खड़े कांप रहे थे। जब मुसाफिर का आग्रह बढ़ा तो मर्द ने सबसे पहले अपनी जान की सुरक्षा चाही और फिर प्रार्थना की—"मेरे स्वामी ! मैंने दो लकड़ियों को जोड़कर खेत में खड़ा करने को 'बेचा' बनाया था ताकि फसलें सुरक्षित रहें—आपने उसे पसंद फर्माया।

मैंने उस काठ के नक़ली चौकीदार को अपना मोटा-झूटा पहना दिया। हुजूर को यह सब अच्छा लगा और अपने सैनिकों को सुर्ख़ बनात की वर्दियां पहना दीं।

मैंने नकली चौकीदार के हाथों में झूठमूठ की तीरकमान थमा दी ताकि ढोर-डंगर फसलें न उजाड़ें। हुजूर को यह सब अच्छा लगा और अपनी सेना में सेनापति का पद स्थापित कर दिया।

मैंने नकली चौकदार के सिर पर घर की खाली हंडिया औंधा दी आपने यह भी पसंद फर्माया और हमारी तमाम आबादियों के चौरस्तों पर बुर्ज बनवा दिए जिन पर मेरे भाई-बंधुओं की मश्कें कस दी गई और वे चील-कौओं का खाजा बन गए।

हुजूर मैं रात के अंधेरे में आपको पहचान नहीं पाया—मेरे स्वामी ! मेरे मां-बाप आप पर कुर्बान—आपके सैनिकों ने इस आबादी पर बड़े अत्याचार किए हैं। किसानों की इस बस्ती में आपकी जान सख़्त ख़तरे में है। मैं आपका सारा सामान समेटे देता हूं। बाहर आपका खच्चर ताज़ा दम खड़ा है। इस बोझ के साथ आपका दूर तक साथ देगा।"

कथाकार कहता है—कि मुसाफिर के पास कहने-सुनने को ज्यादा वक्त नहीं था। वह बहुत जल्दी में था और यों महसूस होता था जैसे बलाओं ने उसे घेरे में ले रखा है।

उसने अपनी भारी चादर से सिर-मुंह अच्छी तरह लपेट लिया और लदे-फदे खच्चर की बाग थामे वहां से किसी अज्ञात मंज़िल की तरफ़ निकल गया।

लॉकर में बंद आवाज़ें

रात का पहला पहर था जब वे दोनों हांफते-कांपते उस उजाड़ कुएं तक पहुंचे थे। उन दोनों ने महत्वपूर्ण सरकारी प्रलेख के भारी पुलंदे मज़बूती के साथ थाम रखे थे। एक-दूसरे को न जानते हुए भी वे एक-दूसरे के लिए केवल इसलिए अनजबी नहीं थे कि दोनों ने महत्वपूर्ण प्रलेखों से हमेशा के लिए छुटकारा पाने की खातिर इस निर्जन इलाके में एक ही उजाड़ कुएं का चुनाव किया था।

इस खलबली की हालत में विस्तार में जाने का समय ही कब था, जान के लाले पड़े थे। और सबसे बढ़कर यह कि दोनों एक ही समय वहां पहुंचे थे और एक-दूसरे से परिचय के लिए यह बहुत था। दोनों अत्यंत खामोशी से एक-एक करके कुएं की मुंडेर पर झुके और अपने-अपने बोझ से आज़ाद हो गए।

अब वे खुले में कुएं की अध-पक्की मुंडेर पर फसक्कड़ा मारकर बैठ रहे थे। उन दोनों के थ्री-पीस सूट कच्ची मिट्टी की बू-बास जज़्ब कर रहे थे और दोनों में से हरएक की गर्दन पर कसी हुई नेकटाई की गिरह ढीली पड़ चुकी थी।

वे देर तक यों ही स्थिर रहे और फिर उन दोनों में से किसी एक ने अपने सीने में गहरा सांस भरा और आप ही आप बड़बड़ाया—"ग़ज़ब खुदा का देखते ही देखते ज़िंदगी की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी।"

"लेकिन, कभी ऐसा देखा न सुना।" दूसरे ने अशिष्ट नज़रों से अपने ईर्द-गिर्द का अवलोकन करते हुए कहा।

"हां कभी नहीं।"

चेहरे-मोहरे की सख़्ती और अत्यंत घबराहट का आभास दोनों में सांझा था।

"कुछ ज़माना ही ऐसा आ गया है कि एतबार ही उठ गया। पक्के स्टाम्प पर लिखत-पढ़त अपने अर्थ गुम कर बैठी।"

"आप सच कहते हैं। ऐसे में ज़बानी कहे-सुने का क्या महत्व रह जाता है। बहुत रोका, बहुत समझाया लेकिन नहीं साहब, एक बाढ़ थी जो उमड़ी चली आती

थी। ऐसे में कोई क्या करे। बहुत बच-बचाकर यह रिकार्ड यहां तक लाने में सफल हुआ हूं।"

"शुक्र है खुदा का। क्या खयाल है अब तक कागजों की स्याही पानी में घुल नहीं गई होगी ?"

"कब की। लेकिन शक पड़ता है कि कहीं कुआं खुश्क ही न हो।"

यह सुनकर दूसरा सन्नाटे में आ गया और संकोच के बाद बोला—"क्या आपने इससे पूर्व दिन की रोशनी में इत्मीनान कर लिया था ?"

"इतना वक्त किसके पास था। आप तो जानते ही हैं यह सब एकाएक ही हुआ है।"

"हां बस देखते ही देखते।"

अब दोनों को चुप-सी लग गई। देर तक गुमसुम बैठे रहे फिर एक ने यों पूछताछ की, "आपके इस भारी बोझ की आवाज़ नहीं आई कुएं में गिरने पर। सुनी थी आपने ?"

"नहीं मैंने ध्यान नहीं दिया। आप कहिए। जब मैं कुएं पर झुका था तो आपने किसी चीज़ के पानी में गिरने की आवाज़ सुनी ?"

"कुछ कह नहीं सकता। असल में हम बहुत जल्दी में थे..."

इधर वे दोनों सख्त चिंता की हालत में उजाड़ कुएं की मुंडेर पर झुके हुए हैं और उधर गांव के चौपालों और गलियारों, शहर के गली-मुहल्लों और दुकानों के थड़ों पर गए वक्तों के लोग अपने कंपकंपाते हाथों में थामे हुए प्रार्थना-पत्रों के पुलंदे लहराते हैं।

वाद-विवाद लम्बा हो गया। गए वक्तों और नई विद्रोही पीढ़ी के बीच समझ-बूझ की सारी राहें बंद होकर रह गई हैं। बुद्धि सख्त हैरान है कि बीच के लोग क्या हुए ? वे जो गए वक्तों और नई पीढ़ी के बीच में पुल बना करते थे।

हर तरफ एक हड़बोंग मची है। कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। शोर है कि थमने में नहीं आता। गांव के चौपालों और गलियारों, शहर के गली-मुहल्लों और दुकानों के थड़ों पर कंपकंपाते हाथ हैं जिनकी कोई गिनती नहीं।

मुर्दा-खानों के दस-दस, बीस-बीस साल पुराने पोस्टमार्टम किए गए मुर्दे दो खण्ड सिरों और मोटे बखिए से सिले हुए पेटों को थामे हुए गिरते-पड़ते चले आते हैं। इसके बावजूद कि उनके पोस्टमार्टमों के फटे-पुराने पत्रों के अंबार अभी कुछ देर पहले उजाड़ निर्जन कुएं में झोंक दिए गए।

कोई कहता है, "बीच की पीढ़ी कहां गई। कहां गए वे लोग जो इस पीढ़ी की खाई को पाट दिया करते थे ?"

रात का पिछला पहर है और उजाड़ कुएं की मुंडेर पर झुके हुए वे बोझिल अस्तित्व कुएं की ओर निरंतर झुकते ही चले जाते हैं।

सांडनी सवार

मैंने जो कुछ अपने स्वर्गीय पिताजी की ज़बानी सुना उसे स्वर्गीय माताजी की आंखों से देखा।

माननीय पिताजी जब हालात की सच्चाई में उलझकर रह जाते वहां मेरी आदरणीय माताजी सहारा देतीं और चूंकि मुझे हमेशा से दूसरों की आंखों देखी का बयान मंत्र-मुग्ध करता चला आया है, इसलिए कभी इस बात से मतलब नहीं रखा कि कहां मेरी स्वर्गीय मां ख़ामोश रहीं और कहां-कहां मेरे बाप ने ग़लत-बयानी से काम लिया।

क्या सच है और क्या झूठ, मुझे इससे कुछ लेना-देना नहीं। बयान मनोरम है और कहानी कहने वाले ने कहा है कि पीरोमुरशिद (गुरु) मग़रिब (सूर्यास्त के बाद) की नमाज़ के बाद अपने मदरसे में पठन-पाठन कर रहे थे। मदरसा क्या था मिल बैठने और सिर टेकने का एक बहाना था। छिदरे छप्पर के नीचे क़िबला की दिशा में एक भारी चट्टान को काटकर मिंबर (प्रवचन देने के लिए विशेष ऊंचा-स्थान) बना लिया गया था जिसके ठीक ऊपर मिट्टी का एक दीया टिमटिमाता था। फ़र्श पर घास-फूस की तह जमी थी जिस पर आला-हज़रत के अलावा कुल चार आदमी थे जो सुनने में डूबे हुए थे।

पीरोमुरशिद ने मिंबर से टेक लगाकर अपनी एक टांग को सामने की दिशा में फैला रखा था और बहुत निःसंकोच होकर बयान फ़रमा रहे थे। ज्ञान की एक नदी बह रही थी जिसके किनारों का कहीं ओर और छोर न मिलता था। ऐसे में दरवाज़े पर दस्तक हुई और दस-बारह जवान बिना इजाज़त अन्दर दाख़िल हुए एक के बाद एक, सिर झुकाए हुए। सबसे ऊंची पगड़ी और भारी लबादाधारी एक लंबे क़द का जवान था, जो ख़ामोशी के साथ एक ओर होकर बैठ गया। फिर बाक़ी जवान आए और निहायत अदब के साथ उसके पीछे पंक्ति में खड़े हो गए।

दीये की मद्धिम रोशनी में नए आने वालों के चेहरे-मोहरों से उनकी पहचान मुश्किल थी अलबत्ता उनकी जवानी उस हल्के अंधेरे से छलकी पड़ती थी। हज़रत साहब ने अपनी टांग को समेट लिया और आलती-पालती मारकर सीधे होकर बैठ गये। ऊंची पगड़ी वाले जवान ने गर्दन की हलकी-सी जुंबिश के साथ अपने पीछे पंक्तिबद्ध साथियों को बैठने का इशारा किया तो वह जहां-जहां खड़े थे, वहीं दो-जानू हो गए।

आला हज़रत ने शायद यह सोचकर कि एक दूसरा विद्वान उनका बयान सुन रहा है, अत्यंत ध्यानपूर्वक ढंग से अपनी गुफ़्तगू जारी रखी और चर्चित समस्याओं की गुत्थियां सुलझाते हुए घड़ी की घड़ी प्रवचन रोका और पगड़ी वाले जवान की ओर संबोधित हुए : "शुभागमन...आपने अपने आगमन और पंथ के बारे में सूचित नहीं किया, न तो अपना परिचय करवाया और न ही आने का सबब बताया।" ऊंची पगड़ी वाले नवयुवक ने कुछ भी न समझते हुए हकलाकर कहा : "जी, बस वैसे ही आ गया था आपका दर्शन करने।"

आला हज़रत ने पूछा, "और आपका नाम ?"

"जी मुझे जोसफ़ कहते हैं।"

हज़रत साहब के माथे पर बल पड़ गए, "जोसफ़ ! जोसफ़ क्या ?" वह होंठों ही में बुदबुदाए फिर दीवार से टेक लगाते और अपनी टांग को दोबारा सामने की ओर फैलाते हुए विद्यार्थियों से कहा, "उसकी ऊंची पगड़ी और भारी लबादे पर न जाओ, यह तो जोसफ़ है।"

कहने वाले ने कहा है कि उसके बाद आला हज़रत रात की नमाज़ तक समस्याओं का बयान करते रहे और उन जवानों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नमाज़ के फ़ौरन बाद आला हज़रत ने सबको उठ जाने की इजाज़त दे दी।

मैं तन-मन से सुनने के लिए तैयार था कि मेरे माननीय पिताजी ने खुलकर ठहाका लगाया और फ़रमाया : "बेटा, उसका नाम यूसुफ़ था। अज्ञानी एक विद्वान की सभा में आ गया था। उसने विद्वानों के लिबास का अपमान किया। बेटे लबादा और चोगा केवल विद्वानों को सजता है।"

मैं सुनता रहा और अपने घुटनों में सिर दिए बैठा रहा। उस समय मुझे जोसफ़ पर तरस आ रहा था और मेरे आदरणीय पिताजी उसे बुरा-भला कहते हुए देर तक तंबाकू पीते रहे थे। फिर अचानक मेरे बाप ने ज़ोर से खंखारकर गला साफ़ करते हुए कहा : "दूसरी बार पीरोमुरशिद से उसका सामना हुआ तो आला हज़रत जंगल में अपनी घोड़ी के लिए घास काट रहे थे। धिक्कार है इस दुनिया के व्यवस्थापक पर कि अपने वक़्त का महान विद्वान अपने मुबारक हाथों से घास छील रहा है और वे जिनके सिरों में भूसा भरा है, हकूमत कर रहे हैं। अफ़सोस बहुत अफ़सोस...

ऐसे में क्या देखते हैं कि एक घुड़-सवार सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ आया।

उसने चेहरे पर नकाब बांध रखा था और उसके लिबास पर गर्द जमी थी। वह घोड़े से उतरा और बिना सलाम-दुआ के और अदब-आदाब का लिहाज़ किए कहने लगा: "मेरे घोड़े की ज़ीन के साथ एक गाय की खाल लटक रही है जिसमें एक लाख दिरहम हैं। इसके बोझ तले मेरा घोड़ा दोहरा हो चला है और मुझे हाजत नहीं। तुम मुझसे अपना बोझ बदल लो। यह घास का गट्ठा मुझे दे दो और यह एक लाख दिरहम तुम ले लो।"

जानते हो पीरोमुरशिद ने जवाब में क्या फ़रमाया ? आला हज़रत ने तिरस्कार के ढंग से कहा, "तू कुरदिस्तान से आया है। तेरी कमर से हिन्दी तलवार बंधी है। क्या तू समझता है कि मैं तुझे नहीं जानता। मैं जानता हूं और बहुत अच्छी तरह जानता हूं। चला जा। तुझे तो बात तक करने का सलीका नहीं।"

यह सुनकर घुड़सवार ने अपने चेहरे पर से नकाब उतार फेंका, माथे का पसीना पोंछा और चुपचाप खड़ा रहा। आला हज़रत के कुरबान जाइए, आपने खूब पहचाना था, वह जाहिल जोसफ़ ही था, जो कुछ देर तो उसी तरह मौन और गुमसुम खड़ा रहा, फिर घोड़े पर बैठ हवा हो गया।

जब आला हज़रत घास का गट्ठा सिर पर उठाए अपने ठिकाने पर पहुंचे तो पता चला कि वह इधर आया था और गाय की खाल, जिसमें पूरे एक लाख दिरहम भरे थे, उनकी चौखट पर फेंक गया है।

किसी ने सुझाव दिया कि लूट-मार के माल को पाक करने का एक ही तरीका है कि उसे आला हज़रत के स्थापित मदरसे पर लगा दिया जाए ताकि ज्ञान का प्रकाश फैले और अज्ञानता मिट जाए। सो यही कुछ हुआ।

माननीय पिताजी यह कहकर चुप हो गए।

कहने वाले ने कहा है कि मदरसा आलिया तो स्थापित हो गया लेकिन निर्धन विद्यार्थियों की हालत खराब ही रही। ज़माने बीत गए। अब आला हज़रत बहुत बूढ़े हो गए थे और अपनी कोठरी से बहुत कम निकलते थे। एक दिन मदरसे के मुख्य दरवाज़े पर एक सांडनी सवार आकर रुका जो मंज़िलें मारता हुआ आया था और आला हज़रत से मुलाकात का इच्छुक था।

यह काम इतना आसान न था। कहने वाले ने कहा है कि वह लंबे कद का सांडनी सवार कभी लाखों में एक रहा होगा, लेकिन उस समय उसकी आंखों के गिर्द स्याह गड्ढे पड़े हुए थे और सिर के बाल जुड़कर एक हो गए थे।

सांडनी सवार कौन था और कहां से आया हुआ था, उसकी किसी को खबर न थी पर वह जिसकी ओर नज़र भरकर देख लेता, उसकी काया पलट कर देता। स्वभाव को दुनियावी विपदाओं और दिलों को घृणित इच्छाओं से मुक्त कर देता।

मदरसे के विद्यार्थियों को उससे मिलने की इजाज़त न थी। आसपास की आबादी उसे देखने की ख्वाहिश में हलकान हो रही थी और वह खुद आला हज़रत

से मुलाकात की ख़्वाहिश में बिना खाए-पिए वहां तीन दिन और तीन रातें रुका।

मदरसे के प्रशासन के बहुत समझाने-बुझाने और दुतकारने पर भी वह टस से मस न हुआ तो आला हज़रत अपनी कोठरी से बाहर तशरीफ़ लाए और सांडनी सवार को मदरसे के आंगन में बुलाकर सदर दरवाज़े में ताला लगवा दिया।

जब आला हज़रत ने सांडनी सवार को और सांडनी सवार ने आला हज़रत को रूबरू पाया तो दोनों देर तक अतीत के धुंधलकों में खोए रहे और चुपचाप एक-दूसरे को तकते रहे। बाहर सदर दरवाज़े पर लोगों के ठठ के ठठ लग गए थे और कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। आखिरकार आला हज़रत ने सांडनी सवार की बेबाक नज़रों की ताब न लाते हुए फ़रमाया : "जाओ भाई अपना काम करो, यहां विद्यार्थी बसते हैं।"

आला हज़रत ने केवल इतना कहा और अपनी कोठरी की ओर निकल गए।

सांडनी सवार ने नज़र भरकर मदरसे के आंगन में फटे-हाल पीले चेहरे वाले विद्यार्थियों को पाठ में मग्न देखा तो अत्यन्त धीमे स्वर में बोला : "मैं तो चला ...तुम अपनी चिंता करो।"

इतना कहकर वह सदर दरवाज़े की चौखट पर गिरा और दम तोड़ दिया।

कहने वाले ने कहा कि वह सांडनी सवार यूसुफ़ ही था जो पहली बार विद्यार्थी बनकर आया था, जब उसे दुतकार दिया गया। फिर वह डाकू लुटेरा बन गया और जब अंतिम बार आया तो मौत भी उसके वश में थी।

आला हज़रत अपने हुजरे में तशरीफ़ फ़रमा थे और मदरसे के लंबे-चौड़े आंगन में सदर दरवाज़े के क़रीब सांडनी सवार पड़ा था। प्रवचन ख़त्म होने तक उसकी मौत का किसी को भी पता न चल सका, यहां तक कि शाम की नमाज़ के क़रीब कुछ विद्यार्थी उस ओर आए और उसे वहां से उठाया। एक विद्यार्थी ने डरते-डरते केवल इतना कहा, "भाइयो...यह तो आला हज़रत से भी बाज़ी ले गया।" मेरी स्वर्गीय मां भी इसी नतीजे पर पहुंची थी अलबत्ता माननीय पिताजी ने हमेशा इससे मतभेद प्रकट किया। उनके ख़्याल में होना तो यह चाहिए था कि उसे जीते जी गाय की खाल में सींकर धूप में डाल दिया जाता, यहां तक कि उसकी हड्डियां कड़कड़ा उठतीं। मदरसा आलिया का सदर दरवाज़ा कहां और वह घृणित कहां।

कहने वाले ने कहा है कि मदरसे का सदर दरवाज़ा उस समय तक न खोला गया, जब तक कि सांडनी सवार को बहुत जल्दी में वहां दफ़न न कर दिया गया।

आस-पास की आबादी बहुत दिनों तक असमंजस की हालत में रही। सच क्या है, झूठ क्या, कुछ पता न चल सका।

कहने वाले ने कहा है कि मदरसे के सदर दरवाज़े पर एक मरियल सांडनी अब भी अपने सवार का इंतज़ार कर रही है।

हुक्मनामा

काले पत्थर के जगह-जगह से उधड़े हुए मार्ग पर काफ़िले निवास नहीं किया करते, चुपचाप गुज़र जाया करते हैं। लदे-फंदे खच्चरों और घोड़ों के साथ चलते हुए मुसाफ़िर इक ज़रा जिज्ञासा के साथ इधर निगाह ज़रूर करते हैं, पर चलते रहते हैं।

कथाकार कहता है कि कभी गए वक़्तों में यहां संक्षिप्त विश्राम के बगैर कोई काफ़िला आगे नहीं बढ़ा। लेकिन अब थके हुए कदम यहां से गुज़रते वक्त तेज़ी से उठते हैं और अगर विश्राम करना आशय हो तो ज़रा दूरी पर निचाई पर जाकर दम लेते हैं।

दास्तानगो बीते हुए ज़माने को याद करता है और बताता है कि सुखद मौसम में जब आकाश साफ़ होता है तो रात हो या दिन आग का अलाव हरदम दहकता ही रहता था और उस पर झुकी हुई एक बूढ़ी गर्दन बस झुकी ही रहती थी। लोहा कूटने की आवाज़ उस घाटी में दूर-दूर तक गूंजती रहती और घोड़ों की हिनहिनाहट में मीठे पानी के ज़खीरे पर लाभ-घाटे के झगड़े निपटने में नहीं आते थे।

इस दूर तक फैली हुई पहाड़ी शृंखला की इन घाटियों में मौसमों की कोई विशेषता नहीं रही। रात की रात को सीटियां बजाती हुई तेज सर्द हवाएं चलती हैं और दोपहर दिन तक धुंध छंट जाती है, सर्दी का ज़ोर टूट जाता है यहां तक कि निचले क्षेत्रों की तरह यहां भी शरद ऋतु सहज-सहज गुज़र ही जाती है।

लेकिन दास्तानगो याद करता है और शरद ऋतु की लम्बी रातों का वर्णन करते हुए कहता है कि एक बार इस नियम से हटकर भी हुआ।

जब धुंध थी कि किसी तरह छंटने में नहीं आती थी। रात और दिन एक हो गए थे, हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था। काले पत्थर के इस जगह-जगह से उधड़े हुए मार्ग के दोनों ओर फैली हुई पहाड़ी शृंखला की इन घाटियों में से प्रचंड ठंडी हवाएं तीरों की तरह सनसनाती हुई गुज़री थीं।

ऐसे में कौन था जो उधर का रुख करता ?

दोनों दिशा के चले हुए काफ़िले जहां थे वहीं के होकर रह गए और यह

कुछ अच्छा नहीं हुआ था।

दास्तानगो इस बात पर हैरान था और अफ़सोस से हाथ मलता था कि दोनों तरफ़ रुके हुए काफ़िले के लोगों में से किसी एक ने भी आख़िर क्यों नहीं ख़याल किया कि इन घाटियों के बीच, पथरीले मार्ग के उस मोड़ पर एक प्राणी जीने का यत्न कर रहा है। उसकी कमर झुककर कमान हो गई थी और इससे बढ़कर यह कि वह अकेला था।

उसके चारों ओर धुंध की मोटी चादर तन गई थी। वह प्रचंड ठंडी हवाओं की लपेट में था और उस शरण-स्थल से बीस कदम की दूरी पर नीचे तराई में मीठे पानी का सोता पत्थर हो गया था।

दास्तानगो कहता है कि वह औंधे मुंह पड़ा था। उसके पांव के इर्द-गिर्द लिपटी हुई मूंज की रस्सियां ख़ून की सर्द पड़ती हुई शिराओं के साथ मिलकर एक हो गई थीं और उसके निकट बिखरे हुए औज़ार ज़मीन में जड़ें कर गए थे। और यह कि ऐसा कुछ कई दिन और कई रातों तक रहा।

उस मुद्दत में दोनों ओर के काफ़िले मौसम साफ़ हो जाने के इंतज़ार में, जहां थे वहीं रुके रहे। पानी का सोता पत्थर ही रहा और मूंज की रस्सियां ख़ून की सर्द शिराओं के साथ मिलकर एक हो गईं।

दास्तानगो ने बताया कि जब मौसम का ज़ोर टूटा तो रात का पहला पहर था। तब एक व्यापारी काफ़िला सबसे पहले वहां पहुंचा और उसके बाद पसीने में लथपथ एक घुड़सवार प्रकट हुआ।

घुड़सवार के वहां आगमन से कुछ ही देर पहले आने वाले काफ़िले के यात्री पहले तो एक जमघट की सूरत उस बर्फ़ की तरह जमे हुए बूढ़े अस्तित्व पर झुके रहे फिर देखते ही देखते अलाव रोशन हुआ, बिखरे हुए उपकरणों को समेटकर एक तरफ़ रखा गया और उसकी जान बचाने के लिए बड़ी भागदौड़ हुई। शायद यही वजह हो कि काफ़िले के वक़्त पर वहां पहुंच जाने और पड़ाव करने से उसके सांस की डोर टूटी नहीं।

दास्तानगो कहता है कि जब घुड़सवार वहां पहुंचा था तो उस बर्फ़ की भांति जमे हुए बूढ़े अस्तित्व में जीवन के लक्षण जाग रहे थे।

नवागत घुड़सवार ने सबसे पहले अपनी पहचान कराई और उसके बाद अपने चोगे के अंदरूनी जेब से एक लिपटा-लिपटाया चमड़े का आदेशपत्र निकालकर सबको दिखाया। फिर वह भी उस बर्फ़ की तरह जमे बूढ़े अस्तित्व पर झुक गया। उसने उस बर्फ़ की तरह जमे ढांचे को पहचानने की कोशिश की लेकिन असफल रहा।

उसे सख़्त उलझन का सामना था और शायद वह उसी तेज़ी से आगे बढ़ जाता कि वहां पर मौजूद सुर्ख़ जटाओं वाला एक बूढ़ा व्यापारी यों कहने लगा—

सरकार का इकबाल बुलंद रहे—मैं ख़ुदा को हाज़िर नाज़िर जानकर कहता हूं—और यह कई वर्ष पहले की बात है कि यह मेरा हमउम्र, टेढ़ी कमर का बूढ़ा इस काले पत्थर के मार्ग पर मंज़िलें मारता हुआ यहां पहुंचा था और फिर यहीं का होकर रह गया था। जाने यह चला कहां से था और उसे किस तरफ़ को जाना

था—मैं तो बस यह कुछ जानता हूं कि उसके संतुलित हाथ-पांव, बाजुओं की तड़पती हुई मछलियों, चौड़ी छाती, चौड़े माथे और सिंदूरी रंगत की छवि आंखों में नहीं समाती थी। वे यह दिन थे जब जवानी को उसके होने पर घमंड था—उसने यह सफ़र क्यों इख़्तियार किया, यह वही जाने या रब सच्चा। लेकिन हुआ यह था कि उस स्थान पर आकर उसकी घोड़ी एकाएक ठोकर खाकर गिरी थी और ख़त्म हो गई थी। उसने जिगर-जिगर करती हुई ज़ीन को खुद अपने हाथों से खोलकर घोड़ी से अलग किया और घुटनों में सिर दिए बैठा रहा फिर उसने तराई में उतरकर पानी पिया और ख़ुदा का शुक्र बजा लाया—

वर्षों पहले जब मेरा यहां से गुज़र हुआ था तो यह सब कुछ उसने बताया था। उस वक़्त मैं भी जवान था और लाखों में एक था लेकिन क्या अर्ज़ करूं—खुद जवानी को उसके होने पर घमंड था। उसने आगे जाने या वापस लौट जाने का इरादा क्यों छोड़ दिया ? यह उसका ख़ुदा जाने पर मेरे ख़याल में उसकी कोई ख़ास वजह जरूर रही होगी...कितने मौसम आए और बीत गए उस वक़्त तक जब जवानी का घमंड टूटा। तब से यह टेढ़ी कमर, यहां पड़ाव करने वाले काफ़िलों का ढाढ़स बना है। हमारे घोड़ों और खच्चरों के टूटे और घिसे हुए नाअल उसने अपने हाथों से बदले, ज़ीन का सामान मुरम्मत किया और इसके अलावा यात्रियों की ख़ातिर उससे जो कुछ बन पड़ा किया...तराई में मीठे पानी का ज़ख़ीरा है—ज़रा चखिए तो—और उस तक पहुंचने के लिए अब खड़ी तराई नहीं उतरनी पड़ती। अब तो ऊपर एक चर्ख़ी घूमती है और उसके साथ चमकता हुआ डोल जो पलक झपकते शहद से बढ़कर मीठा पानी ऊपर खींच लाता है—क्षमा कीजिएगा। इस समय घूमने वाली चर्ख़ी और डोल दिखाई नहीं दे रहे। यह दूधिया धुआं और मटियाला अंधेरा सुबह तक छंट जाएगा तो खुद मुलाहिज़ा कर लीजिएगा।

दास्तानगो का बयान है कि उस सुर्ख़ जटाओं वाले बूढ़े की बात अधूरी रह गई। नवागंतुक घुड़सवार ने उसे हाथ के इशारे से ख़ामोश कर दिया और बोला—"तुमने मेरा काम आसान कर दिया। मैं जिस अभिप्राय से यहां आया हूं इस को बहुत पहले इस काम की ख़ातिर भेजा गया था।"

उसने यह कहा और अपनी कमर से लटकते हुए ख़ंजर को एक झटके के साथ खोला, फ़िज़ा में लहराया और पलक झपकते ही उस बर्फ़ की तरह जमे हुए बूढ़े अस्तित्व में उतार दिया।

उसके बाद वह वहां ज्यादा देर नहीं रुका। उसने घड़ी, दो घड़ी में मरने वाले की सज़ा का आदेशपत्र पढ़कर सुनाया, झुककर मौत की पुष्टि की और तराई में मीठे पानी के जख़ीरे की ओर निकल गया।

वह बहुत जल्दी में था, उसने सुबह की प्रतीक्षा भी नहीं की और पसीने से लथपथ जिधर से आया था उधर ही निकल गया।

दास्तानगो कहता है कि रात को ठहरने वाले काफ़िले का कोई एक व्यक्ति भी बचकर नहीं गया। सब एड़ियां रगड़ते और खून थूकते हुए बीत गए।

जाने वाला मीठे पानी के ज़ख़ीरे में उस चमड़े के आदेश-पत्र के साथ अत्यंत तेज़ी से प्रभाव करने वाला ज़हर उंडेल गया था।

□□